स्वदेशी पत्रिका

वर्ष–20, अंक–1, पौष–माघ 2068, जनवरी 2012

सम्पादक
विक्रम उपाध्याय

कार्यालय
धर्मक्षेत्रा, सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग
रामकृष्णपुरम्, नयी
दिल्ली–110022
से प्रकाशित
दूरभाष : 011–26184595
स्वदेशी जागरण समिति की ओर से ईश्वर दास महाजन द्वारा कॉम्पीटेंट बाइन्डर्स (प्रिंटिंग यूनिट), नवीन शाहदरा, दिल्ली–32 से मुद्रित।

रपट

संसद में आमजन की आवाज नहीं उठेगी तो सड़क–चौराहों पर शोर होगा ही। ऐसे आंदोलन ही लोकतंत्र व अराजकता के बीच की दीवार है, ये न रहे तो देश अराजकता के आगोश में होगा।

अनुक्रम

रपट
स्वदेशी के मंत्र से खत्म होगा भ्रष्ट तंत्र /4

कृषि
सिर्फ इच्छा नहीं इच्छाशक्ति चाहिए
– देविन्दर शर्मा /6

दृष्टिकोण
कहाँ से लाएगा केन्द्र अनाज
– डॉ. अश्विनी महाजन /9

सामयिकी
किसानों के देश में किसान की सुनने वाला कोई नहीं
– शेष नारायण सिंह /11

गरीबी
भूख और कुपोषण की काली हांडी
– श्रुति नागवंशी /14

चर्चा
कौन से धन को काला धन कहें?
– वेद प्रताप वैदिक /16

विचार–विमर्श : महंगाई के दौर में जरूरी है बचत करना
– जयंतीलाल भंडारी /18

रोजगार : नए रोजगार क्षेत्रों में बढ़े भागीदारी
– भारत डोगरा /21

पर्यावरण
सुनिए मधुमक्खी का संदेश
– जवाहरलाल कौल /23

जल : पानी पर सोचने का समय
– राजेन्द्र सिंह ठाकुर /25

अर्थव्यवस्था : अहित करने वाले आर्थिक सुधार
– डॉ. भरत झुनझुनवाला /26

राजनीति से : नए नए छल करती वर्तमान सरकार
– बलवीर पुंज /28

प्रतिक्रिया : सबसे बड़ा राजनीतिक छल
– ए. सूर्यप्रकाश /30

समीक्षा : वर्ष 2012 में चुनौतियों भी कम नहीं
– निरकार सिंह /32

लेख : घरेलू महिलाओं का अवमूल्यन क्यों?
– रेणु पुराणिक /34

पाठकनामा/2, आंदोलन/36

पाठकनामा

जरूरी है खाद्य उत्पादन बढ़ना और जनसंख्या नियंत्रण

आज देश में खाद्य उत्पान की दशा काफी चिंताजनक है। कीटनाशकों और यूरिया के अधिक प्रयोग ने स्थिति को काफी गंभीर बना दिया है। जिसका परिणाम यह हुआ कि खाद्य वस्तुओं पर महंगाई ने आम जनता की कमर तोड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी। अभी हाल ही में ऑक्सफैम ने यह कहा कि विश्व खाद्य व्यवस्था में सुधार न होने की दशा में 2030 तक मुख्य खाद्य पदार्थों की कीमत दो गुनी होने की संभावना है।

लेकिन जहां तक मैं समझता हूँ कि खाद्य उत्पादन संकट का सबसे बड़ा कारण आज देश में बढ़ती जनसंख्या और इसके साथ–साथ आवासीय समस्या के कारण भूमि का अधिकतर आवासीय कालोनियों में बंटते जाना है और इसके साथ कुछ भूमि औद्योगिक विकास के क्षेत्र में भी अधिगृहीत होती जा रही है। जिसके कारण आज खाद्य उत्पादन की समस्या दिन प्रति दिन गंभीर होती जा रही है। हमें सबसे पहले अपने देश की जनसंख्या पर नियंत्रण करना होगा जो काफी तेजी से बढ़ती जा रही है अगर जनसंख्या नियंत्रण को नहीं रोका गया तो आने वाले दिनों में खाद्य उत्पादन संकट के साथ–साथ महंगाई का भी सामना करना पड़ेगा। अतः भविष्य के लिए अगर कोई काम करना है तो वह है खाद्य उत्पादन बढ़ना और जनसंख्या नियंत्रण करना। – राकेश दास, मीडिया अपार्टमेंट, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

कब कहे हम सरकारी कर्मचारी भ्रष्ट नहीं

मैं नियमित रूप से स्वदेशी पत्रिका और हर हिन्दी अखबार पढ़ता हूँ। पिछले छह महीने से लोग भ्रष्टाचार के खिलाफ काफी बढ़चढ़कर भाग ले रहे थे। अन्ना हजारे ने तीन बार भूख हड़ताल भी की और देश की जनता ने भी उनका काफी साथ दिया। परंतु जैसे ही अन्ना का आंदोलन खत्म हुआ तो भी सरकारी कर्मचारियों ने कोई सीख नहीं ली। आज भी आम आदमी देश के भ्रष्टाचारियों से जूझ रहा है। आप कहीं कोई भी काम करने जाइए बस रिश्वत दें तो काम होगा अन्यथा नहीं होगा। मुझे देखकर हैरानगी होती है सरकारी कर्मचारी अन्ना के आंदोलन से कोई सबक भी नहीं सीख सके। आज सरकारी अफसर कहते हैं कि जनता नहीं सुधरती है लेकिन वो अपनी गलतियों को कभी नहीं देखती हैं। आज जनता को सरकारी अस्पतालों में ठीक इलाज मिले, सरकारी स्कूलों में ठीक पढ़ाई हो, पुलिस विभाग हफ्तावसूली को छोड़े, सरकारी राशन की दुकानों का गेहूँ जो आपकी ही पड़ोसी की चक्की वालों पर पहुँच जाता है, जो जनता को नहीं मिलता बल्कि ब्लैक मार्केट में पहुंचता है। अगर यह सब ठीक से जनता को मिले – तो फिर जनता क्यों रिश्वत दें। आज जरूरत है कि सरकारी विभाग सरकारी नौकरी को समाज सेवा मानकर काम करेंगे तो जनता भी गर्व से कह सकेगी कि मेरे देश के सरकारी कर्मचारी भ्रष्टाचारी नहीं है।

– चन्दर मयाल, सुभाष नगर, रुड़की

आवश्यक नहीं कि इस अंक के भीतर प्रस्तुत लेखकों के विचार स्वदेशी पत्रिका के संपादक मंडल के विचारों से मेल खाते हों। पाठकों की जानकारी के लिए उन्हें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

संपादकीय कार्यालय

"धर्मक्षेत्र" शिव शक्ति मन्दिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

दूरभाष : 011–26184595 • ई–मेल : swadeshipatrika@rediffmail.com

अगर आप घर बैठे स्वदेशी पत्रिका चाहते हैं तो डिमांड ड्राफ्ट, मनीऑर्डर अथवा चेक द्वारा शुल्क *'स्वदेशी पत्रिका'* दिल्ली के नाम भेजने का कष्ट करें।

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 100 रुपए

आजीवन सदस्यता शुल्क: 1,000 रुपए

यदि शुल्क भेजने के उपरांत भी आपको पत्रिका समय पर उपलब्ध नहीं हो पा रही है तो तुरंत पत्रिका कार्यालय को सूचित करें।

(ध्यानार्थ : कृपया अपना नाम व पता साफ अक्षरों में लिखें)

उन्होंने कहा

सुने सबकी मगर वोट अपने जमीर की आवाज पर दो। इसके लिए मतदान के समय अपने घर के सबसे छोटे बच्चे का चेहरा और उसके भविष्य को ध्यान में जरूर रखो।

– गोविन्दाचार्य

स्वदेशी आंदोलन राष्ट्र निर्माण के लिए आवश्यक है। यह दलीय सीमाओं से ऊपर का आंदोलन है। इसे दलीय परिप्रेक्ष्य में देखना गलत है।

– पी. मुरलीधर राव

भ्रष्टाचार का खात्मा व्यवस्था परिवर्तन से ही संभव है। यह परिवर्तन कालेधन की समस्या को भी जड़ से समाप्त करेगी। स्वदेशी को आत्मसात करके ही व्यवस्था परिवर्तन किया जा सकता है।

– सुश्री उमा भारती

संपादकीय

जन भावनाओं का अपमान है सिंगल ब्रांड में 100 प्रतिशत विदेशी निवेश का निर्णय

सिंगल ब्रांड में 100 प्रतिशत और मल्टी ब्रांड में 51 प्रतिशत विदेशी निवेश के कैबिनेट के निर्णय के संदर्भ में लगभग सभी गैर कांग्रेसी राजनीतिक दलों, श्रमिक एवं किसान संगठनों और सामाजिक संगठनों द्वारा जिस प्रकार जोरदार ढंग से देशभर में विरोध हुआ, उसे हमने हाल ही में देखा है। ऐसे में संसद 10 दिन नहीं चल सकी और सरकार को अपने घोषित निर्णय से पीछे हटने के लिए विवश होना पड़ा।

अब जब संसद सत्र नहीं चल रहा और सरकार ने सिंगल ब्रांड में कैबिनेट के निर्णय को लागू करते हुए 100 प्रतिशत विदेशी निवेश को अनुमति देने वाला आदेश जारी कर दिया है, इसे जन भावनाओं के अपमान के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता। सरकार द्वारा फरवरी 2006 में सिंगल ब्रांड खुदरा क्षेत्र में 51 प्रतिशत विदेशी निवेश की अनुमति दे दी गई थी। यहां यह समझना जरूरी है कि उस निर्णय के कारण देश को कोई लाभ नहीं हुआ बल्कि इलेक्ट्रॉनिक और टेलीकॉम क्षेत्र में विकास के अवसर अवरूद्ध हो गए। हमारा देश जो अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी, सामरिक प्रौद्योगिकी जैसे– मिसाईल इत्यादि, आई.टी. और सॉफ्टवेयर में दुनिया का सिरमौर देश बन चुका है। सिंगल ब्रांड में विदेशी निवेश को अनुमति देने के कारण देश की प्रौद्योगिकी के विकास को धक्का लगा। 2006 के बाद के कालखंड में हमारा देश टेलीकॉम उपकरणों इत्यादि के उत्पादन में पिछड़ा और हमारी निर्भरता विदेशों पर बढ़ गई। विदेशी ब्रांडों से गैर बराबरी की प्रतियोगिता के कारण देश में विदेशी ब्रांडों का प्रादुर्भाव बढ़ा और भारतीय ब्रांड अधिक विकसित नहीं हो सके। सरकार का सिंगल ब्रांड खुदरा क्षेत्र में विदेशी निवेश की सीमा को 100 प्रतिशत करना देश के लिए और विशेषतौर पर टेलीकॉम क्षेत्र के लिए एक अहितकारी कदम है।

हमारे अर्थशास्त्री प्रधानमंत्री ने हाल ही में कहा है कि सकल घरेलू उत्पाद की चालू वर्ष में संवृद्धि दर 7 प्रतिशत तक ही रहेगी। प्रधानमंत्री के मुख्य आर्थिक सलाहकार कौशिक बसु की बात माने तो इस घटती आर्थिक संवृद्धि के पीछे सरकार द्वारा खुदरा क्षेत्र में विदेशी निवेश को न कर पाना एक मुख्य कारण है। जब भी सरकार विरोधों के चलते इन तथाकथित आर्थिक सुधारों को आगे नहीं बढ़ा पाती तो सारा दोष इनके विरोधियों पर मढ़ने का प्रयास किया जाता है। जब ऐसा नहीं हो पाता तो अर्थव्यवस्था की तमाम समस्याओं के लिये अंतर्राष्ट्रीय हालातों को जिम्मेदार ठहराया जाता है। नई आर्थिक नीति और तथाकथित आर्थिक सुधारों के समर्थकों का लगातार यह कहना रहा है कि इससे आर्थिक संवृद्धि को बढ़ावा मिलेगा और देश के आम लोगों का जीवन स्तर भी इससे सुधरेगा। आर्थिक सुधारों के नाम पर बारम्बार जो नीति सुझाव आते हैं वे विदेशी निवेश से संबंधित होते हैं। कई बार ऐसा लगता है कि आर्थिक सुधार और विदेशी निवेश जैसे पर्यायवाची बन गये हैं।

ऐसे में देश में घटती आर्थिक संवृद्धि अंतर्राष्ट्रीय परिदृष्य के कारण नहीं बल्कि सरकार की गलत आर्थिक नीतियों के कारण है। पिछले लगभग कई वर्षों से महंगाई लगातार बढ़ती जा रही है। सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक के द्वारा अपनाए जाने वाले तमाम उपाय निष्प्रभावी साबित हो रहे हैं। पिछली तिमाही में आर्थिक संवृद्धि की दर में होने वाली कमी भविष्य में मुश्किलों की ओर संकेत कर रही है। देश में इंफ्रास्ट्रक्चर, उद्योगों और सेवा क्षेत्र में तेजी से विकास के लिए आर्थिक संवृद्धि की दर को ऊंचा बनाए रखना नितांत आवश्यक है। बढ़ती महंगाई और उसके कारण मजबूरी में बढ़ाई जा रही ब्याज दरें देश के लिए मुश्किलें बढ़ा रही हैं। बहानेबाजी छोड़ते हुए महंगाई पर काबू पाने के लिए कृषि उत्पादों की पूर्ति बढ़ानी होगी और उसके लिए उसे अभी तक की कृषि की अनदेखी को समाप्त करना होगा। इससे गरीबों को सस्ती दरों पर खाद्य पदार्थ तो उपलब्ध होंगे ही, ब्याज दरों को नियंत्रण में रखते हुए आर्थिक संवृद्धि की दर भी बढ़ेगी।

स्वदेशी जुटान : 28–29 दिसम्बर 2011 (काशी)

स्वदेशी के मंत्र से खत्म होगा भ्रष्ट तंत्र

वालमार्ट व विदेशी पूंजी निवेश के जरिए देश को खोखला करने की साजिश की जा रही है। इसके लिए विदेशी की तमाम नजीरें दी जा रही है, जबकि वास्तविकता है कि अमरीकी अर्थव्यवस्था 2020 तक ध्वस्त हो जाएगी।

– राजनाथ सिंह (वरिष्ठ पत्रकार)

स्वदेशी मात्र एक विचार नहीं बल्कि मंत्र है। इसे आत्मसात कर राष्ट्र के समक्ष उत्पन्न चुनौतियों का सामना किया जा सकता है। इससे भ्रष्ट तंत्र टूटेगा तो कालाधन की समस्या भी खत्म होगी। रही बात इसे अपनाने की तो केवल कुछ वस्त्र व आभूषण धारण करना स्वदेश की भावना का प्रतीक नहीं हो सकता। इसके लिए तन के साथ ही मन भी स्वदेशी के रंग में रंगना होगा।

उक्त बात वरिष्ठ पत्रकार राजनाथ सिंह ने स्वदेशी जागरण मंच की ओर से धर्म राय शिक्षा मंडल दुर्गाकुंड में आयोजित दो दिवसीय (28–28 दिसम्बर 2011) स्वदेशी जुटान के उद्घाटन सत्र में कही।

उन्होंने कहा कि देश के प्रति समर्पण का आधार स्वदेशी और इसका अवलंब स्वाभिमान है। इससे ही स्वतंत्रता की भावना विकसित होती है। साथ ही वर्तमान परिवेश पर दुख व्यक्त करते हुए कहा कि हम आर्थिक रूप से परतंत्र होते जा रहे हैं। इससे भ्रष्टाचार, कालाधन व महंगाई जैसी तमाम चुनौतियां बढ़ रही हैं। इसके लिए वर्तमान सरकार की नीतियां जिम्मेदार हैं।

उन्होंने कहा कि वालमार्ट व विदेशी पूंजी निवेश के जरिए देश को खोखला करने की साजिश की जा रही है। इसके लिए विदेशी की तमाम नजीरे दी जा रही है, जबकि वास्तविकता है कि अमरीकी अर्थव्यवस्था 2020 तक ध्वस्त हो जाएगी। साथ ही चीन का पतन भी सन्निकट है।

गोविंदाचार्य ने कहा कि संसद में आमजन की आवाज नहीं उठेगी तो सड़क–चौराहों पर शोर होगा ही। ऐसे

> स्वदेशी सिर्फ एक आंदोलन भर नहीं है बल्कि एक आत्मिक विश्वास, विचार और संकल्प है।
> — सुश्री उमा भारती

> स्वदेशी आंदोलन राष्ट्र निर्माण के लिए आवश्यक है। यह दलीय सीमाओं से ऊपर का आंदोलन है। इसे दलीय परिप्रेक्ष्य में देखना गलत है।
> — मुरलीधर राव

आंदोलन ही लोकतंत्र व अराजकता के बीच की दीवार है, ये न रहें तो देश अराजकता के आगोश में होगा।

उन्होंने कहा कि गंभीर राजनीतिक व चुनाव सुधार के अभाव में जन इच्छा सदन में मुखरित नहीं हो पा रही है, यह त्रासदी है। ऐसे में देश में भारत व गरीब परस्त दलीय ताकत की आवश्यकता है। नकार वोट का समर्थन करते हुए कहा कि सरकार ऐसी व्यवस्था दे या न दे जनता ब्लैक बैलेट के जरिए इसका उपयोग अवश्य करे। सुने सबकी मगर वोट अपने जमीर की आवाज पर दो।

इसके लिए मतदान के समय अपने घर के सबसे छोटे बच्चे का चेहरा और उसके भविष्य को ध्यान में जरूर रखो। यह भ्रष्टाचारियों के मुंह पर करारा तमाचा होगा।

सुश्री उमा भारती ने कहा स्वदेशी सिर्फ एक आंदोलन भर नहीं है बल्कि एक आत्मिक विश्वास, विचार और संकल्प है। उन्होंने कहा कि देश स्वदेशी विचारधारा के आधार पर पंच देवताओं जल, जंगल, जमीन, जर और जानवर की रक्षा और संवर्द्धन कर देश को दुनिया का सबसे शक्तिशाली देश बनाया जा सकता है।

श्री मुरलीधर राव ने कहा कि स्वदेशी किसी खास दल का नहीं है बल्कि दलों से अलग देश का आंदोलन है।

उन्होंने कहा स्वदेशी आंदोलन राष्ट्र निर्माण के लिए आवश्यक है। यह दलीय सीमाओं से ऊपर का आंदोलन है। इसे दलीय परिप्रेक्ष्य में देखना गलत है। अन्ना हजारे व बाबा रामदेव के साथ जब हम सब संगठित होकर खड़े होंगे, तभी व्यवस्था परिवर्तन होगा।

भोजपुरी फिल्म अभिनेता मनोज तिवारी ने कहा कि आज अन्ना के भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन से समाज में ईमानदारों की इज्जत बढ़ी है। दलगत भावनाओं को त्याग कर इस मुहिम में जुड़ने से ही देश का कल्याण होगा। साथ ही स्वदेशी की भावना विकसित होगी।

सत्र को संतोष हेगड़े, बृजभूषण, कश्मीरी लाल जी आदि ने संबोधित किया। संचालन योगेश शुक्ला व संजय चतुर्वेदी ने तथा आभार प्रकाश संजय पाठन ने किया।

स्वदेशी जुटान सम्मेलन के अंतिम दिन स्वदेशी को आत्मसात करने के लिए लोगों को जागरूक करने संबंधी प्रस्ताव डॉ. चंद्रमोहन द्वारा पेश किया गया, जिसे सर्वसम्मति से पारित कर दिया गया।

सम्मेलन के आयोजन में सहयोग दिव्य सेवा मिशन के आशीष गौतम, शिव नारायण, अभय जी, वीरेन्द्र सिंह, केदार नाथ सिंह, सुधीर मिश्र, रामगोपाल मोहले, मीना चौबे, अशोक चौरसिया, डॉ. उत्तम ओझा, अवधेश सारथी, पार्षद जगदीश त्रिपाठी व अजय सिंह मुन्ना आदि ने किया। ❑

> मतदान के समय अपने घर के सबसे छोटे बच्चे का चेहरा और उसके भविष्य को ध्यान में जरूर रखो। यह भ्रष्टाचारियों के मुंह पर करारा तमाचा होगा। — गोविन्दाचार्य

सिर्फ इच्छा नहीं इच्छाशक्ति चाहिए

जब हरेक गांव अपनी खाद्य जरूरत के मामले में स्थानीय स्तर पर आत्मनिर्भर हो जाएगा, उसके बाद खाद्य सुरक्षा की सरकारी इच्छा काफी हद तक सुगम हो जाएगी। जहां तक शहरों का प्रश्न है तो पीडीएस और सामुदायिक सहयोग से शहरी आबादी को भोजन मुहैया कराना बहुत हद तक संभव है। शहरों में मॉनिटरिंग करना सुगम होने से यहां गड़बड़ियों पर अंकुश रखना ज्यादा आसान होगा। कुल मिलाकर प्रश्न सरकार की मंशा से अधिक उसकी इच्छाशक्ति पर है। कहीं ऐसा न हो कि सार्वजनिक कल्याण के खाते में हजारों करोड़ का व्यय और दर्ज हो जाए तथा भूखे लोग अन्न के इंतजार में तरसते ही रहें।

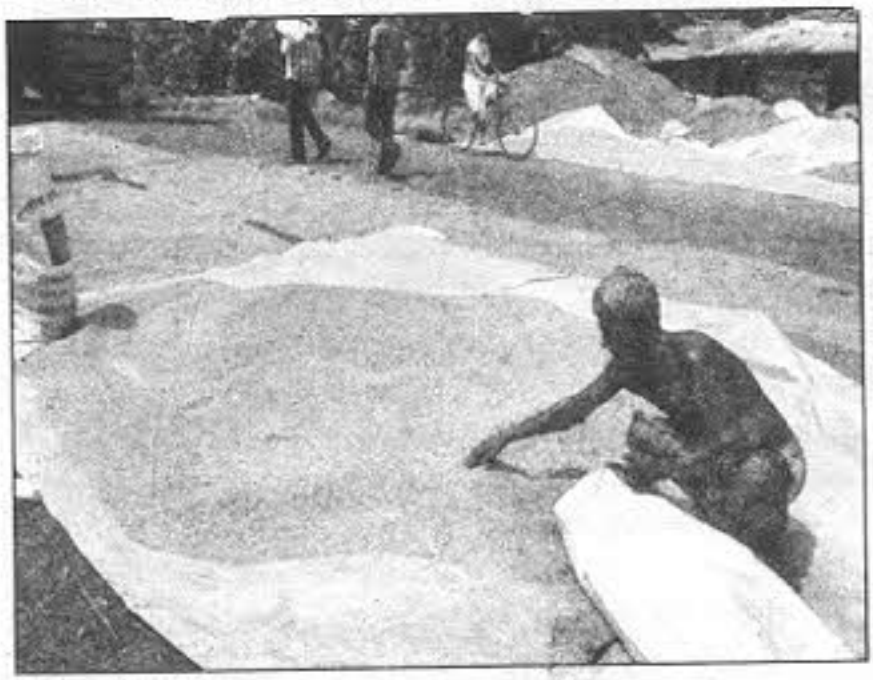

■ देविन्दर शर्मा

लंबे इंतजार के बाद अंततः खाद्य सुरक्षा विधेयक संसद में पेश कर दिया गया। निश्चित रूप से भुखमरी के खिलाफ जंग के लिए यह ऐतिहासिक पहल कही जा सकती है।

खासकर तब, जबकि दुनिया की लगभग सौ करोड़ की भूखी आबादी में भारतीय हिस्सेदारी तकरीबन 32 फीसद तक है। ऐसे उपायों से भारत यदि भुखमरी पर काबू पाने में कामयाब होता है तो इसे वैश्विक स्तर पर भी भोजन के लिए जारी संघर्ष में बड़ी कामयाबी और प्रोत्साहन माना जाएगा।

भारत में भोजन संकट कितना गहन है इसका अनुमान 'ग्लोबल हंगर इंडेक्स–2011' में इसकी निम्न पायदान से हो जाता है। इसके अनुसार भूख के मोर्चे पर 81 देशों की मौजूदगी वाले इस सूचकांक में भारत का स्थान बेहद नीचे 67वां है। यदि बांग्लादेश को छोड़ दें तो भारत की यह रैंकिंग अन्य सभी पड़ोसी देशों के मुकाबले कमतर है, जो कि बेहद शर्मनाक है।

लेकिन महज संसद में पेश खाद्य सुरक्षा बिल के भरोसे ही यदि भारतीयों के भोजन संकट के हल की अपेक्षा की जा रही है, तो इस बाबत नाउम्मीदी की उम्मीद ज्यादा है। कहा जा सकता है कि भोजन के अधिकार को सुनिश्चित करने के नाम पर लाए गए इस चर्चित बिल के दोषपूर्ण प्रावधानों से एक माकूल मौका गवा दिया गया है। इससे भूख तो कम नहीं ही होगी, अलबत्ता भ्रष्टाचार बढ़ेगा तथा हमारी संकटग्रस्त खेती बिल्कुल तबाह हो जाएगी।

मौजूदा सूरतेहाल में तय है कि भोजन के अधिकार के इस प्रयास से अन्न के मामले में आयात निर्भरता खासी बढ़ जाएगी। यह भी प्रतीत होता है कि अपनी लोकलुभावन इमेज को पुख्ता करने की

खाद्य सुरक्षा की यह राह भारत के लिए कतई मुफीद नहीं है। जैसा कि महात्मा गांधी ने कहा था कि भारत जैसे देश में खाद्य उत्पादन केवल जनता के लिए ही नहीं, बल्कि जनता के द्वारा भी होना चाहिए। भारत की सामाजिक–आर्थिक परिस्थिति में सिर्फ आयातित खाद्यान्न से पेट भरने को ही खाद्य सुरक्षा कहना उचित नहीं है। होना तो यह चाहिए कि भोजन की उत्पादन – आपूर्ति शृंखला ऐसी हो जिससे भूख तो मिटे ही लोगों को रोजगार और बेहतर जीवन भी मिले।

फिलहाल देश की तकरीबन 90 करोड़ आबादी पीडीएस के दायरे में है, परंतु प्रस्तावित कानून में महज 62.5 फीसद यानी लगभग 75 करोड़ आबादी को ही लक्षित किया गया है। यह खाद्य आपूर्ति विधेयक के ढोल का पोल जाहिर करता है। इसके अमलीकरण में अन्न की उपलब्धता भी बड़ा मसला है। बिल के प्रावधानों के अनुरूप इसके लिए सालाना 600 लाख टन अनाज की दरकार है तथा 250 लाख टन अनाज सरकार के बफर स्टॉक के लिए भी चाहिए।

चाह में सरकार महज कम कीमत पर अनाज उपलब्ध कराने को अपना कर्तव्य मान बैठी है, गरीबों के आर्थिक सशक्तीकरण की बात उसके एजेंडे से नदारद है। उसने मनरेगा से भी सबक नहीं सीखा, जो भ्रष्टाचार के आरोपों में तो घिरी ही है, अनुत्पादक काम के बदले मिली मजदूरी ने खेती को भी काफी हद तक इफेक्ट किया है।

हरित क्रांति से पहले खाद्यान्न मामले में आयात निर्भरता के कारण जुमला चर्चित था, 'शिप टू माउथ', मतलब कि जहाजों से आयातित अनाज से ही हमारा पेट भरता था। खाद्य सुरक्षा कानून के अमल के बाद आशंका है कि हालात फिर वैसे ही हो जाएं। इस बिल में उन बाधाओं और खामियों के निदान की अनदेखी की गई है जो अब तक खाद्य सुरक्षा की राह में खलनायक रही हैं।

मसलन, इसमें खाद्यान्न वितरण का जिम्मा उसी पीडीएस पर है जो लगभग 42 सालों से वजूद में होने के बावजूद देश से भूख मिटाने में बुरी तरह नाकामयाब रही है। लंबे वक्त से इसकी खामियों को दुरुस्त करने की सिर्फ बात हो रही है, लेकिन कुछ ठोस नहीं किया गया।

नए बिल में अनाज की कीमतें जरूर कम रखी गई हैं लेकिन इससे गरीबों को राहत मिले न मिले, भ्रष्टाचार को बढ़ावा जरूर मिलेगा। पहले से कम कीमत के रियायती खाद्यान्न कालाबाजारियों को और अधिक ललचाएंगे। एक अन्य तथ्य भी काबिलेगौर है।

खाद्यान्न वितरण का जिम्मा उसी पीडीएस पर है जो लगभग 42 सालों से वजूद में होने के बावजूद देश से भूख मिटाने में बुरी तरह नाकामयाब रही है। लंबे वक्त से इसकी खामियों को दुरुस्त करने की सिर्फ बात हो रही है, लेकिन कुछ ठोस नहीं किया गया। नए बिल में अनाज की कीमतें जरूर कम रखी गई हैं लेकिन इससे गरीबों को राहत मिले न मिले, भ्रष्टाचार को बढ़ावा जरूर मिलेगा।

फिलहाल देश की तकरीबन 90 करोड़ आबादी पीडीएस के दायरे में है, परंतु प्रस्तावित कानून में महज 62.5 फीसद यानी लगभग 75 करोड़ आबादी को ही लक्षित किया गया है। यह खाद्य आपूर्ति विधेयक के ढोल का पोल जाहिर करता है। इसके अमलीकरण में अन्न की उपलब्धता भी बड़ा मसला है। बिल के प्रावधानों के अनुरूप इसके लिए सालाना 600 लाख टन अनाज की दरकार है तथा 250 लाख टन अनाज सरकार के बफर स्टॉक के लिए भी चाहिए।

मतलब कि कुल जरूरत 850 लाख टन की है। कुछ वर्षों पूर्व तक अन्न की सरकारी खरीद 250–300 लाख टन तक होती थी। लेकिन पिछले 5–6 सालों से यह बढ़कर 500–600 लाख टन तक हो गई है। मतलब यह कतई नहीं कि हमारा उत्पादन बढ़ा है बल्कि मेरा मानना है कि इस अवधि में महंगाई बढ़ने से लोगों की

खरीद क्षमता घटी है, जो आकड़ों में वृद्धि के बतौर नजर आती है।

मायने यह कि पहले महंगाई बढ़ाकर गरीबों का भोजन छीना गया, फिर उसी को वापस देकर दरियादिली दिखाई जा रही है। भूख से निजात दिलाने की यह कोशिश हमारे कृषि क्षेत्र के लिए घातक होगी। कारण यह कि अनाज के उत्पादन और जरूरत के बीच की खाई पाटने के लिए सरकार आयात की बात कह रही है। आयात–निर्यात का खेल हमारे हुक्मरानों का हमेशा से पसंदीदा रहा है। लेकिन सस्ता आयात होने से हमारा वह छोटा किसान खेती से बिल्कुल बाहर हो जाएगा जो कि इस क्षेत्र में बहुतायत में है।

आशंका यह भी है कि आयातित अनाज पर हमारी निर्भरता दीर्घावधि में हमारी संप्रभुता को भी खतरे में डाल सकती है। हालांकि कृषि मंत्री शरद पवार ने उत्पादन बढ़ाने के लिए 1.10 लाख करोड़ के निवेश की बात उठाई है लेकिन इसका कितना हिस्सा हमारे परंपरागत कृषि क्षेत्र को मिल सकेगा, कहना मुश्किल है। कारण सरकारी नीतियों का वह रुझान है जो भूमि अधिग्रहण के जरिए कृषि भूमि का रकबा घटाने का इच्छुक है और कृषि सुधारों के नाम पर कांट्रैक्ट खेती और जीएम फसलों का पैरवीकार है।

आशंका यही है कि उक्त राशि का बड़ा हिस्सा 'कॉरपोरेट खेती' की खिदमत में जाएगा। तय है कि खाद्य सुरक्षा की यह राह भारत के कतई मुफीद नहीं है। जैसा कि महात्मा गांधी ने कहा था कि भारत जैसे देश में खाद्य उत्पादन केवल जनता के लिए ही नहीं, बल्कि जनता के द्वारा भी होना चाहिए। भारत की सामाजिक–आर्थिक परिस्थिति में सिर्फ आयातित खाद्यान्न से पेट भरने को ही

आशंका यह भी है कि आयातित अनाज पर हमारी निर्भरता दीर्घावधि में हमारी संप्रभुता को भी खतरे में डाल सकती है। हालांकि कृषि मंत्री शरद पवार ने उत्पादन बढ़ाने के लिए 1.10 लाख करोड़ के निवेश की बात उठाई है लेकिन इसका कितना हिस्सा हमारे परंपरागत कृषि क्षेत्र को मिल सकेगा, कहना मुश्किल है।

खाद्य सुरक्षा कहना उचित नहीं है। होना तो यह चाहिए कि भोजन की उत्पादन–आपूर्ति श्रृंखला ऐसी हो जिससे भूख तो मिटे ही लोगों को रोजगार और बेहतर जीवन भी मिले।

खाद्य सुरक्षा विधेयक में कुछ सुधार बेहद जरूरी है। वजह तलाशनी जरूरी है कि जब देश के कुछ छह लाख से अधिक गांवों में से पांच लाख गांव अन्न उत्पादक हैं, फिर वहां की स्थानीय आबादी भूखी क्यों है। कारण मौजूदा प्रणाली में निहित है। अभी अन्न की संग्रहण और वितरण प्रक्रिया बेतरह केंद्रीकृत है। लक्ष्य होना चाहिए कि खाद्य सुरक्षा के मामले में गांवों को आत्मनिर्भर बनाया जाए। इसके लिए अधिकांश गांवों में मौजूद पंचायत भवनों को अन्न भंडारों के बतौर उपयोग करना होगा। जब हरेक गांव अपनी खाद्य जरूरत के मामले में स्थानीय स्तर पर आत्मनिर्भर हो जाएगा, उसके बाद खाद्य सुरक्षा की सरकारी इच्छा काफी हद तक सुगम हो जाएगी।

जहां तक शहरों का प्रश्न है तो पीडीएस और सामुदायिक सहयोग से शहरी आबादी को भोजन मुहैया कराना बहुत हद तक संभव है। शहरों में मॉनिटरिंग करना सुगम होने से यहां गड़बड़ियों पर अंकुश रखना ज्यादा आसान होगा। कुल मिलाकर प्रश्न सरकार की मंशा से अधिक उसकी इच्छाशक्ति पर है। कहीं ऐसा न हो कि सार्वजनिक कल्याण के खाते में हजारों करोड़ का व्यय और दर्ज हो जाए तथा भूखे लोग अन्न के इंतजार में तरसते ही रहें। ❑

कहाँ से लाएगा केन्द्र अनाज

राज्यों को इस विधेयक से सबसे बड़ी शिकायत यह है कि यह विधेयक इस संबंध में राजस्व जुटाने के प्रति मौन है। इसलिए बिहार और तमिलनाडु सहित कई राज्यों ने इस विधेयक का सख्त विरोध किया है। केंद्र और राज्य सरकारें इस खाद्य सुरक्षा विधेयक को लागू करने के लिए धन जुटा भी लें तो भी इसके कार्यान्वयन के लिए जितना अनाज जरूरी है, वह सरकार के बूते के बाहर होगा. . .

■ डा. अश्विनी महाजन

भारत में खाद्य सुरक्षा के लिए एक नया कानून प्रस्तावित है। इस नए कानून के जरिये गरीब लोगों को सस्ती दरों पर खाद्यान्न मुहैया कराने का कानूनी प्रावधान होगा। प्रस्तावित कानून के अनुसार ग्रामीण जनसंख्या के 90 प्रतिशत और शहरी जनसंख्या के 50 प्रतिशत लोगों को इस कानून का लाभार्थी बनाया जाएगा, लेकिन इस बिल के अनुसार कुल जनसंख्या के 75 प्रतिशत को दो भागों में बांटा जाएगा।

एक भाग में प्राथमिकता वाले गृहस्थों को शामिल किया जाएगा, जिन्हें न्यूनतम 7 किलो खाद्यान्न प्रति व्यक्ति बेहद कम कीमत यानी 3 रुपये प्रति किलो गेहूं, चावल 2 रुपये प्रति किलो और बाजरा एक रुपये प्रति किलो की दर से उपलब्ध कराया जाएगा।

दूसरी ओर सामान्य गृहस्थ होंगे, जिन्हें प्रति व्यक्ति 5 किलो खाद्यान्न, न्यूनतम समर्थन मूल्य के 50 प्रतिशत की दर से उपलब्ध कराया जाएगा। इस बिल में प्रस्तावित किया गया है कि ग्रामीण जनसंख्या के 46 प्रतिशत और शहरी जनसंख्या के 28 प्रतिशत को प्राथमिक गृहस्थ के रूप में वर्गीकृत किया जाए और ग्रामीण क्षेत्र की 44 प्रतिशत और शहरी क्षेत्र की 22 प्रतिशत जनसंख्या को सामान्य गृहस्थ के रूप में वर्गीकृत किया जाए।

इसका अभिप्राय यह है कि लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या को 7 किलो अनाज प्रति व्यक्ति 1 रुपये से 3 रुपये की कीमत पर उपलब्ध कराने का प्रावधान होगा और लगभग 35 प्रतिशत जनसंख्या को प्रति व्यक्ति 3 किलो अनाज समर्थन कीमत के आधे पर उपलब्ध होगा।

जब खाद्य सुरक्षा कानून बनाने की बात शुरू हुई थी, तब यह कहा गया था कि देश की 90 प्रतिशत जनसंख्या को इस कानून के दायरे में लाया जाएगा। प्रस्तावित विधेयक में ग्रामीण क्षेत्रों के 46 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों के 28 प्रतिशत जनसंख्या तक सीमित कर दिया गया है।

इसका अभिप्राय यह है कि कुल जनसंख्या का मात्र 40 प्रतिशत ही 3 रुपये

समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि गरीबी के आकलन एवं गरीब की पहचान के बारे में सरकार द्वारा वर्तमान में जो प्रणाली अपनाई जाती है, उसके अनुसार गरीबी के सरकारी अनुमानों एवं गरीबी के वास्तविक आपात में भारी अंतर आ गया है। मापदंड के आधार पर गरीबों की संख्या में भारी अंतर दिखाई देता है।

बिल में प्रस्तावित किया गया है कि ग्रामीण जनसंख्या के 46 प्रतिशत और शहरी जनसंख्या के 28 प्रतिशत को प्राथमिक गृहस्थ के रूप में वर्गीकृत किया जाए और ग्रामीण क्षेत्र की 44 प्रतिशत और शहरी क्षेत्र की 22 प्रतिशत जनसंख्या को सामान्य गृहस्थ के रूप में वर्गीकृत किया जाए।

किलो गेहूं और 2 रुपये किलो चावल का हकदार होगा। ग्रामीण जनसंख्या का 29 प्रतिशत और शहरी जनसंख्या का 22 प्रतिशत वास्तव में किसान को दी जाने वाली कीमत के आधे पर खाने का हकदार होगा।

खाद्य सुरक्षा विधेयक संसद में पेश किया जा चुका है, लेकिन अब भी इस विधेयक के बारे में गरीबी की परिभाषा और गरीब की पहचान के संबंध में कई अनसुलझे सवाल बाकी हैं। हालांकि राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने विधेयक का मसौदा तो तैयार किया है, लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि सरकार गरीबी की कौन-सी परिभाषा का उपयोग करेगी।

इस संदर्भ में संसदीय समिति ने सुझाव दिया था कि सरकार गरीबी की बहुआयामी एवं विस्तृत अवधारणा ले, ताकि गरीब की पहचान सही ढंग से हो सके। समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि गरीबी के आकलन एवं गरीब की पहचान के बारे में सरकार द्वारा वर्तमान में जो प्रणाली अपनाई जाती है, उसके अनुसार गरीबी के सरकारी अनुमानों एवं गरीबी के वास्तविक आपात में भारी अंतर आ गया है। मापदंड के आधार पर गरीबों की संख्या में भारी अंतर दिखाई देता है।

इसलिए समिति ने सुझाव दिया था कि गरीब की पहचान एवं आकलन के लिए अपनाए जा रहे मापदंड को केंद्र, राज्य सरकारें और स्थानीय एजेंसियों के संयुक्त प्रयास द्वारा इस प्रकार से बनाया जाए ताकि गरीबी की सही पहचान हो सके।

हालांकि खाद्य सुरक्षा कानून के कार्यान्वयन के लिए पूरा अनाज केंद्र सरकार द्वारा राज्यों को उपलब्ध कराया जाएगा, लेकिन राज्यों से यह अपेक्षा रखी गई है कि वे यह सुनिश्चित करेंगे कि अनाज लक्षित लोगों तक पहुंच जाए। इसका मतलब यह है कि वे इसके लिए राज्य, जिला एवं ब्लॉक स्तर पर भंडारण और ट्रांसपोर्ट सुविधाएं अपने खर्च से करेंगे। इस विषय में देरी या कोताही होने पर राज्यों को अपने खजाने से खाद्य सुरक्षा भत्ता देना होगा।

राज्यों को इस विधेयक से सबसे बड़ी शिकायत यह है कि यह विधेयक इस संबंध में राजस्व जुटाने के प्रति मौन है। इसलिए बिहार और तमिलनाडु सहित कई राज्यों ने इस विधेयक का सख्त विरोध किया है। केंद्र और राज्य सरकारें इस खाद्य सुरक्षा विधेयक को लागू करने के लिए धन जुटा भी लें तो भी इसके कार्यान्वयन के लिए जितना अनाज जरूरी है, वह सरकार के बूते के बाहर होगा। हालांकि इस साल अनाज का अच्छा उत्पादन होने से यह काम थोड़ा आसान हो गया है, लेकिन कम उत्पादन होने पर सरकार के लिए खाद्य सुरक्षा कानून को लागू करना टेढ़ी खीर होगा। ❑

खाद्य सुरक्षा विधेयक संसद में पेश किया जा चुका है, लेकिन अब भी इस विधेयक के बारे में गरीबी की परिभाषा और गरीब की पहचान के संबंध में कई अनसुलझे सवाल बाकी हैं। हालांकि राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने विधेयक का मसौदा तो तैयार किया है, लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि सरकार गरीबी की कौन-सी परिभाषा का उपयोग करेगी।

किसानों के देश में किसान की सुनने वाला कोई नहीं

किसानों की आत्महत्या क्या सचमुच इतना असंवेदनशील विषय है कि हमारी संसद भी लंबे अंतराल के बाद मौन तोड़ती भी है तो सरकार सुनती नहीं और मीडिया सुध नहीं देता। क्या किसानों के इस देश में किसान इस कदर हाशिये पर फेंक दिया गया है कि उसकी दुर्दशा पर ध्यान देनेवाला कोई नहीं है?

■ शेष नारायण सिंह

एक बहस होगी लोकसभा में। बहस के पहले ही पूरी संसद और पूरा देश लोकपाल की बहस पर लटक गया है लेकिन एक बहस हुई राज्यसभा में। पूरे दो दिन। लेकिन न किसी ने जाना और न किसी ने सुना। वे सांसद भी अनमने ही बहस में शामिल हुए जिनकी संजीदगी से बहुत कुछ बदल सकता था।

किसानों की आत्महत्या क्या सचमुच इतना असंवेदनशील विषय है कि हमारी संसद भी लंबे अंतराल के बाद मौन तोड़ती भी है तो सरकार सुनती नहीं और मीडिया सुध नहीं देता। क्या किसानों के इस देश में किसान इस कदर हाशिये पर फेंक दिया गया है कि उसकी दुर्दशा पर ध्यान देनेवाला कोई नहीं है?

किसानों की आत्महत्या देश की राजनीतिक पार्टियों को हमेशा मुश्किल में डालती रहती है। हालांकि मीडिया आमतौर पर किसानों की आत्महत्या की बात करने से बचता है लेकिन कुछ ऐसे पत्रकार हैं जो इस मामले पर समय समय बहस का माहौल बनाते रहते हैं। देश के कुछ इलाकों में तो हालात बहुत ही बिगड़ गए हैं और लोगों की समझ में नहीं आ रहा है कि समस्या का हल किस तरह से निकाला जाए। हो सकता है कि इन्हीं कारणों से संसद के शीतकालीन सत्र में राज्यसभा ने समय निकाला और किसानों की आत्महत्या से पैदा हुए सवाल पर दो दिन की बहस कर डाली।

बीजेपी के वेंकैया नायडू की नोटिस पर नियम ९७६ के तहत अल्पकालिक चर्चा में बहुत सारे ऐसे मुद्दे सामने आये जिसके बाद कि संसद ने इस विषय पर बात को आगे बढाने का मन बनाया। बहस के दौरान सदस्यों ने मांग की कि इसी विषय पर चर्चा के लिए सदन का एक विशेष सत्र बुलाया जाए। बहस के अंत में इस बात पर सहमति बन गयी कि सदन की एक कमेटी बनायी जाए जो किसानों की आत्महत्या के कारणों पर गंभीर विचार-विमर्श करे और सदन को जल्द से जल्द रिपोर्ट पेश करे।

बाद में लोकसभा में सीपीएम के नेता

किसानों की आत्महत्या देश की राजनीतिक पार्टियों को हमेशा मुश्किल में डालती रहती है। हालांकि मीडिया आमतौर पर किसानों की आत्महत्या की बात करने से बचता है लेकिन कुछ ऐसे पत्रकार हैं जो इस मामले पर समय-समय बहस का माहौल बनाते रहते हैं। देश के कुछ इलाकों में तो हालात बहुत ही बिगड़ गए हैं और लोगों की समझ में नहीं आ रहा है कि समस्या का हल किस तरह से निकाला जाए।

और कृषि मंत्रालय की स्थायी समिति के अध्यक्ष, वासुदेव आचार्य ने लोकसभा स्पीकर से मिल कर आग्रह किया कि राज्यसभा की जो कमेटी बनने वाली है उसमें लोकसभा के सदस्य भी शामिल हो जाएँ तो कमेटी एक जेपीसी की शक्ल अख्तियार कर लेगी।

राज्यसभा में बहस की शुरुआत करते हुए बीजेपी के वेंकैया नायडू ने किसानों की आत्महत्या और खेती के सामने पेश आ रही बाकी दिक्कतों का सिलसिलेवार जिक्र किया। उन्होंने कृषि लागत और मूल्य आयोग की आलोचना की और कहा कि उस संस्था का तरीका वैज्ञानिक नहीं है। वह पुराने लागत के आंकड़ों की मदद से आज की फसल की कीमत तय करते हैं जिसकी वजह से किसान ठगा रह जाता है। फसल बीमा के विषय पर भी उन्होंने सरकार को सीधे तौर पर कटघरे में खड़ा किया।

खेती की लागत की चीजों की कीमत लगातार बढ़ रही है लेकिन किसान की बात को कोई भी सही तरीके से नहीं सोच रहा है जिसके कारण इस देश में किसान तबाह होता जा रहा है। उन्होंने कहा कि जीडीपी में तो सात से आठ प्रतिशत की वृद्धि हो रही है जबकि खेती की विकास दर केवल २ प्रतिशत के आसपास है।

उन्होंने कहा कि किसानों को जो

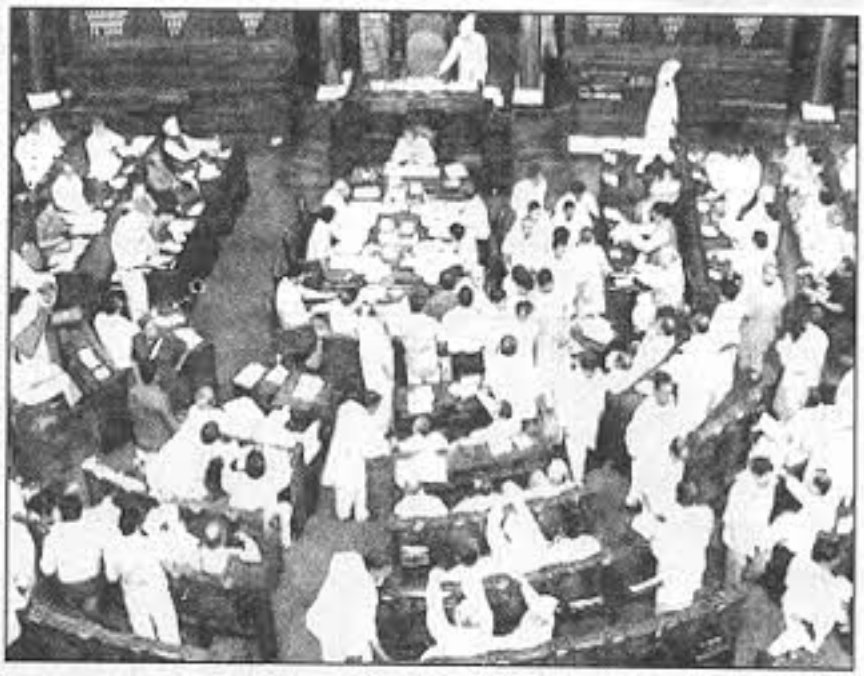

सरकारी समर्थन मूल्य मिलता है वह बहुत कम है। उन्होंने इसके लिए भी सरकार को जिम्मेदार ठहराया। बहस में कई पार्टियों के सदस्यों ने हिस्सा लिया लेकिन नामजद सदस्य, मणिशंकर अय्यर ने किसानों की समस्याओं को सही परिप्रेक्ष्य में लाने की कोशिश की।

उन्होंने साफ कहा कि आत्महत्या करने वाले किसान वे नहीं होते जो खाद्यान्न की खेती में लगे होते हैं और आमतौर पर सरकारी समर्थन मूल्य पर निर्भर करते हैं।

किसानों की आत्महत्या के ज्यादातर मामले उन इलाकों से सुनने में आ रहे हैं जहां नकदी फसल उगाई जा रही है. नकदी फसल के लिए किसानों को लागत बहुत ज्यादा लगानी पड़ती है। नकदी फसल के किसान पर देश के अंदर हो रही उथल पुथल का उतना ज्यादा असर नहीं पड़ता जितना कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रही अर्थव्यवस्था के उतार-चढ़ाव का पड़ता है। जब उनके माल की कीमत दुनिया के बाजारों में कम हो जाती है तो उसके सामने संकट पैदा हो जाता है। वह अपनी फसल में बहुत ज्यादा लागत लगा चुका होता है। लागत का बड़ा हिस्सा कर्ज के रूप में लिया गया होता है। माल को रोकना उसके बूते की बात नहीं होती। सरकार की गैर जिम्मेदारी का आलम यह है कि खेती के लिए कर्ज लेने वाले किसान को छोटे उद्योगों के लिए मिलने वाले कर्ज से ज्यादा ब्याज देना पड़ता है। एक बार भी अगर फसल खराब हो गयी तो दोबारा पिछली फसल के घाटे को संभालने के लिए वह अगली फसल में ज्यादा पूंजी लगा देता है। अगर लगातार दो तीन साल तक फसल खराब हो गयी तो मुसीबत आ जाती है। किसान कर्ज के भंवरजाल में

राज्यसभा में बहस की शुरुआत करते हुए बीजेपी के वेंकैया नायडू ने किसानों की आत्महत्या और खेती के सामने पेश आ रही बाकी दिक्कतों का सिलसिलेवार जिक्र किया। उन्होंने कृषि लागत और मूल्य आयोग की आलोचना की और कहा कि उस संस्था का तरीका वैज्ञानिक नहीं है। वह पुराने लागत के आंकड़ों की मदद से आज की फसल की कीमत तय करते हैं जिसकी वजह से किसान ठगा रह जाता है।

फंस जाता है। जिसके बाद उसके लिए बाकी जिंदगी बंधुआ मजदूर के रूप में कर्ज वापस करते रहने के लिए काम करने का विकल्प रह जाता है। किसानों की आत्महत्या के कारणों की तह में जाने पर पता चलता है कि ज्यादातर समस्या यही है।

राज्यसभा में बहस के दौरान यह साफ समझ में आ गया कि ज्यादातर सदस्य आपने इलाकों के किसानों की समस्याओं का उल्लेख करने के एक मंच के रूप में ही समय बिताते रहे।

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के सीताराम येचुरी ने समस्या के शास्त्रीय पक्ष पर बात की, सदन में भी और सदन के बाहर भी. उन्होंने सरकार की नीयत पर ही सवाल उठाया और कहा कि अपने जवाब में कृषिमंत्री ने जिस तरह से आंकड़ों का खेल किया है वह किसानों की आत्महत्या जैसे सवाल को कमजोर रोशनी में पेश करने का काम करता है।

उन्होंने सरकार पर आरोप लगाया कि २००७ के एक जवाब में सरकार ने कहा था कि नैशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो का आंकड़ा किसानों की आत्महत्या के मामले में ही सही आंकड़ा है जबकि जब राज्यसभा में इस विषय पर हुई दो दिन की बहस का जवाब केन्द्रीय कृषि मंत्री महोदय दे रहे थे तो उन्होंने राज्य सरकारों से मिले आंकड़ों का हवाला दिया।

सीताराम येचुरी ने आरोप लगाया कि यह सरकार की गलती है। कोई भी मुख्यमंत्री या राज्य सरकार आमतौर पर यह स्वीकार करने में संकोच करती है कि उसके राज्य में किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहे हैं। उन्होंने उन अर्थशास्त्रियों को भी आड़े हाथों लिया जो आर्थिक सुधारों के बल पर देश की अर्थव्यवस्था में सुधार लाने का कोशिश कर रहे हैं। सीताराम ने साफ कहा कि जब तक इस देश के किसान खुशहाल नहीं होगा तब तक अर्थव्यवस्था में किसी तरह की तरक्की के सपने देखना बेमतलब है। उन्होंने साफ कहा कि जब तक खेती में सरकारी निवेश नहीं बढाया जाएगा, भण्डारण और विपणन की सुविधाओं के ढांचागत निवेश का बंदोबस्त नहीं होगा तब तक इस देश में किसान को वही कुछ झेलना पड़ेगा जो अभी वह झेल रहा है।

उन्होंने सरकार पर आरोप लगाया कि पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप के नाम पर खेती से जुड़ी हर लाभकारी स्कीम को एमएनसी के हवाले करने की जो योजना सरकारी चर्चाओं में सुनने में आ रही है वह बहुत ही चिंताकारक है.

एक दिन की बहस के बाद जब कृषिमंत्री शरद पवार ने जवाब दिया तो लगभग तस्वीर साफ हो गयी कि सरकार इतने अहम मसले पर भी लीपापोती का काम करने के चक्कर में है। सरकार की तरफ से कृषि मंत्री ने एक हैरत अंगेज बात भी कुबूल कर डाली। उन्होंने कहा कि इस देश में २७ प्रतिशत किसान ऐसे हैं जो खेती को लाभदायक नहीं। बाद में जनता दल (यू) के शिवानन्द तिवारी ने कहा कि कृषिमंत्री के बयान से लगता है कि २७ प्रतिशत किसान खेती छोड़ना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि यह २७ प्रतिशत किसान का मतलब यह है कि देश के करीब १७ करोड़ किसान खेती से पिंड छुडाना चाहते हैं। यह बात बहुत ही चिंता का कारण है, भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ आबादी का एक बड़ा हिस्सा खेती से अलग होना चाहता है। कृषिमंत्री ने इस बात को भी स्वीकार किया कि रासायनिक खादों को भी किसानों को उपलब्ध कराने में सरकार असमर्थ है। उन्होंने कहा कि दुनिया के कई देशों में खाद उत्पादन करने वाली बड़ी कंपनियों ने गिरोह बना रखा है और वे भारत सरकार से मनमानी कीमतें वसूल कर रहे हैं। सरकार ऐसी हालत में मजबूर है। उन्होंने इस बात पार भी लाचारी दिखाई कि सरकार किसानों को सूदखोरों के जाल में जाने से नहीं बचा सकती। बहरहाल सरकार की लाचारी भरे जवाब के बाद यह साफ हो गया है कि इस देश में किसान को कोई भी राजनीतिक या सरकारी समर्थन मिलने वाला नहीं है – किसान को इस सरकार ने राम भरोसे छोड़ दिया है। ❑

भूख और कुपोषण की काली हांडी

नवउदारवादी नीतियां न सिर्फ बच्चों के मुंह से निवाला छीन रहा है बल्कि देश में एक वंचित वर्ग भी पैदा कर रहा है जो भारत को भूख और कुपोषण की ऐसी काली हांडी के रूप में बदलता जा रहा है जिस पर एक देश या समाज के रूप में हम कभी गर्व नहीं कर सकेंगे।

■ श्रुति नागवंशी

भूख और कुपोषण पर केन्द्रित हंगामा रिपोर्ट जारी करते हुए हमारे प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने इस बात पर शर्मिंदगी जाहिर की है कि देश के 42 प्रतिशत बच्चे आज भी भुखमरी के शिकार हैं। प्रधानमंत्री की निश्चित रूप से न सिर्फ उनकी बल्कि समूचे व्यवस्था और समाज की शर्मिंदगी भी है कि हम दुनिया के हर तीसरे भूखे बच्चे के अभिभावक हैं।

लेकिन क्या प्रधानमंत्री के इतना कह देने भर से परिस्थितियों में बदलाव आ जाएगा? नवउदारवादी नीतियां न सिर्फ बच्चों के मुंह से निवाला छीन रहा है बल्कि देश में एक वंचित वर्ग भी पैदा कर रहा है जो भारत को भूख और कुपोषण की ऐसी काली हांडी के रूप में बदलता जा रहा है जिस पर एक देश या समाज के रूप में हम कभी गर्व नहीं कर सकेंगे।

आज जिनके घर में दाना नहीं है क्या वे हमेशा से ऐसे ही थे कि अपने बच्चों की परवरिश न कर पाएं और एक वक्त के निवाले के लिए उन्हें स्कूल की दिशा दिखा दें। देश के सबसे बड़े प्रदेश उत्तर प्रदेश की दशा देखिए। यहां की अधिकांश जातियां या फिर वर्ग जिनके बच्चे आज कुपोषित हैं वे खुद लंबे समय से शोषण के शिकार होते रहे हैं। मुसलमानों, बुनकरों, मुसहरों एवं धसिया आदिवासी समुदाय के बीच काम करते हुए हमने पाया है कि ये जातियां या वर्ग नवउदारवादी नीतियों द्वारा शोषण के शिकार हुए हैं।

इसे महज संयोग ही नहीं मानना चाहिए कि जो प्रधानमंत्री आज कुपोषण पर शर्म महसूस कर रहे हैं उन्हीं प्रधानमंत्री ने वित्तमंत्री रहते इन आर्थिक नीतियों का

क्रियान्वयन किया था।

सांझा संस्कृति के लिए प्रसिद्ध बिनकारी 1990 के दशक के बाद नवउदारवादी नीतियों की शिकार हो गयी। बनारस, टाण्डा–अम्बेडकर नगर, मऊ, मुबारकपुर–आजमगढ़, पिलखुआ–गाजियाबाद, सरधना–मेरठ के बिनकारी का धंधा बन्द होना शुरू हुआ, जिससे लाखों की संख्या में (वाराणसी में तकरीबन एक लाख) बुनकरों ने सूरत और बंगलुरू की तरफ पलायन कर दिया। बिनकारी छोड़कर रिक्शा चलाना, गारा–मिट्टी का काम (मकान बनाने) आदि शुरू किया, वहीं शहरों से अपनी महंगी जमीन बेचकर सस्ते दाम वाली जमीन या किराये के मकान में शहर से बाहर की ओर बसना शुरू कर दिया। टाण्डा में दलित बुनकर के बच्चे प्रीतम की मौत हो या बनारस में विशम्भर के बच्चों की मौत, यह तो जारी ही था, परंतु सबसे अधिक हालत खराब मुस्लिम बुनकरों की हुई। शहर से बाहर प्रवास कर गये मुस्लिम बुनकरों की नयी बस्ती, टोले धन्नीपुर गांव में कुपोषण से होने वाली मौतों ने इस बात को पुख्ता कर दिया है कि भूख और कुपोषण से होने वाली इन मौतों के मूल में नवउदारवादी

आर्थिक नीतियां ही हैं।

आंगनवाडी एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली से दूर मुस्लिम बुनकरों के इन टोले मे खाद्य असुरक्षा शुरू हुई, जिसमे 14 बच्चे तीसरे और चौथे श्रेणी मे कुपोषण के शिकार थे। अति कुपोषित शाहबुद्दीन को अस्पताल मे भर्ती कराया गया। यह मामला मानवाधिकार जननिगरानी समिति ने शासन–प्रशासन, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग एवं मीडिया के संज्ञान मे लाया, वही दूसरी तरफ संगठन के साथियों ने शाहबुद्दीन को उसके खून की कमी को पूरा करने के लिए अपना खून दिया, किन्तु इसके बाद भी उसकी शहादत हो गयी। संगठन ने पुनः शासन–प्रशासन पर दबाव बनाने के लिए मीडिया मे घटना को प्रकाशित कराते हुए पूरी दुनिया मे हंगर एलर्ट जारी किया। इस हस्तक्षेप के बाद कमिश्नर, जिलाधिकारी सहित विभिन्न अधिकारियों ने उस इलाके का दौरा किया और अति कुपोषित बच्चों को जिला अस्पताल मे भर्ती कराया, जहां डाक्टरों ने कहा – "बच्चों को चिकित्सा नही, पोषक खाद्य की जरूरत है।" पोषक भोजन नहीं मिलने पर इलेक्ट्रानिक मीडिया के साथ मिलकर भोजन के लिए जिला अस्पताल के सामने भीख मांगना शुरू कर दिया। इस अभियान से मीडिया में बहस शुरू हुई, जिसके कारण धन्नीपुर में कई आंगनवाडी खुले। सभी गरीब मुस्लिम बुनकरों को लाभ और साथ ही राशन के लिए सफेद कार्ड मिला, एएनएम ने बस्ती मे आना शुरू किया। परिणामतः इस इलाके मे भूख और कुपोषण से होने वाली मौते बन्द हुई। आज केन्द्र सरकार ने छह हजार करोड़ का पैकेज बुनकरों के लिए दिया है जिसका फायदा निश्चित रूप से बुनकरों को मिलना चाहिए।

इसी तरह पूर्वी उत्तर प्रदेश (पूर्वांचल) में 5 लाख आबादी वाले मुसहरों के पास न तो खेती योग्य जमीन है और न आजीविका के आय का साधन, मुसहर न ही सार्वजनिक वितरण प्रणाली से जुड़े होते है और न इनके इलाके मे बच्चों के लिए आगंनवाडी केन्द्र होते है। जिस कारण बहुत से मुसहर परिवार पंजाब की ओर पलायन कर रहे है और अधिकांश को ईंट–भट्टों मे बन्धुआ मजदूर बनना पडता है। एक दिलचस्प तथ्य मुसहरों के बारे में यह है की काफी संख्या में मुसहर धान एवं गेहूँ कटाई के समय पंजाब चले जाते है। कुछ कटाई मे लगे रहते है, सड़क किनारे किसी बाजार के करीब रहने लगते है और कटाई के बाद कई किलोमीटर जाकर खेतो मे यहां वहां बिखरा (दरारों मे फंसा) अनाज बटोरकर उस अनाज को बाजार मे बेचते है। बेचने के बाद सबसे पहले खाने का सामान खरीदते है।

आस–पास गुरूद्वारा मिल गया तो वही खाना खा लेते है। जाहिर है वहां उनके बच्चो के लिए शिक्षा, दोपहर भोजन योजना (एमडीएम), आंगनवाडी कार्यक्रम (आईसीडीएस) की कोई व्यवस्था नही होती है।

जब वहां जाने वाले मुसहरो से पूछा गया – आप अपने घर से इतनी दूर क्यो जाते है। उन्होने बताया – "यदि खेतों में अनाज नहीं मिला तो गुरूद्वारा तो है, इन गुरूद्वारा में न तो छूआछूत है न ही पूर्वी उत्तर प्रदेश की तरह जाति के नाम ऊंची जातियों का अत्याचार, न ही पुलिसिया उत्पीडन।" उनका कहना है कि मनरेगा में न तो समय से काम मिलता है, न ही काम करने के बाद पूरी मजदूरी, यदि काम मिल गया तो मजदूरी के लिए रोजगार सेवक, ग्राम प्रधान, बैंकों का चक्कर लगाना पडता है। इस बीच तो हमारे बच्चे भूखे मर जाएंगे, इससे तो अच्छा है की खेतों मे बिखरा अनाज बटोरकर दिन भर में एक समय भोजन तो मिल ही जाता है।"

मुसहरों के बच्चे भुखमरी और कुपोषण से सबसे अधिक बरसात में अकाल मृत्यु के शिकार होते है, क्योंकि उस समय न तो ईंट–भट्टो पर बन्धुआगिरी से आधा पेट ही सही खाने का भोजन होता है, न मनरेगा का काम।

मुसहरों की स्थिति व संघर्षों के बाद बेलवा, सकरा, आयर, अनेई जैसे गांवो मे आंगनवाडी खुली, जमीनें मिली, छूआछूत–जातपात कम हुआ, मुसहरो की आवाज सुनी जाने लगी, उनके बच्चे स्कूलों से जुड़े, वहां एमडीएम मिला, एएनएम बस्तियों मे आने लगी। तो एक चमत्कार हुआ, बच्चों का कुपोषण और भुखमरी से मरना बंद हुआ। बच्चे तीसरे, चौथे कुपोषण की श्रेणी मे नहीं है, उनकी आंखों मे आज भी हाड़तोड मेहनत और जिन्दगी जीने की लालसा है। सेना के ब्लैक कैट कमाण्डो को आधे पेट भोजन के बाद हाड़तोड़ मेहनत के साथ आशा भरी जिन्दगी जीने वाले मुसहरों से जीवन जीने की कला सीखनी चाहिए।

जहां जहां सरकारी स्तर पर प्रभावी कार्यक्रम चले हैं और स्थानीय रोजगार की संभावनाएं पैदा हुई हैं वहां भूख और कुपोषण का प्रभाव कम हुआ है। यदि खाद्य सुरक्षा, बाल एवम महिला कल्याण की सभी योजनाए ईमानदारी से लागू हो, तब कुपोषण पर 'हंगामा रिपोर्ट' के हंगामा पर रोक लगाया जा सकता है। उत्तर प्रदेश के चुनाव में देखना है कि राजनीति दल कब बच्चों के कुपोषण और भुखमरी को अपना चुनावी मुद्दा बनाते हैं।

(लेखक भूमि सरकारी मानवाधिकार कार्यकर्ता हैं।)

कौन से धन को काला धन कहे?

देश में लगभग साढ़े तीन करोड़ लोग टैक्स देते हैं। इनमें से तीन करोड़ लोगों को टैक्स के जाल से बाहर किया जाए और मोटी आय वाले सिर्फ 50–60 लाख लोगों से सिर्फ 10 प्रतिशत टैक्स लिया जाए तो सरकार की झोली भर जाएगी। देश में आर्थिक ईमानदारी का माहौल बनेगा और विदेशों से काला धन लौटा लें तो कहने ही क्या?

■ वेद प्रताप वैदिक

काले धन पर संसद में चली बहस कितनी सतही थी? इस बहस से यह पता नहीं चलता कि आखिर काला धन है क्या? हम किस धन को काला कहें और किसे सफेद? क्या वह सब धन अपने आप काला हो जाता है, जिस पर कर नहीं दिया जाता?

आपकी कितने ही खून–पसीने की कमाई हो और अगर आपने टैक्स नहीं दिया तो सरकार उसे काला धन घोषित कर देती है याने काले और सफेद का पैमाना सिर्फ एक है कि उस धन पर सरकार को टैक्स दिया गया है या नहीं?

क्या कोई यह पूछनेवाला भी है कि इस टैक्स का इस्तेमाल कैसे होता है? आखिर यह टैक्स उगाहा क्यों जाता है?

राजीव गांधी कहते थे कि रूपए में से सिर्फ 15 पैसे जनता तक पहुंचते हैं और राहुल गांधी कहते हैं कि सिर्फ 10 पैसे पहुंचते हैं। याने टैक्स के नाम पर दिया गया 90 प्रतिशत पैसा अपने आप काला हो जाता है, अर्थात सरकार को टैक्स देना अपने पैसे को काला धन बनाना है। काला धन तो वह है, जिसे हमारे नेता और नौकरशाह अपनी सुख–सुविधाओं पर खर्च करते हैं और जो रिश्वत, तस्करी, ब्लैकमेल, दादागीरी, अवैध दलाली और चोरी–डकैती से कमाया जाता है। यह निकृष्टतम काला धन है।

इसीलिए कि यह सरकारी पैसा जनता के भले के लिए इस्तेमाल किया जाए लेकिन वाकई क्या यह जनता की सेवा के लिए इस्तेमाल होता है?

राजीव गांधी कहते थे कि रूपए में से सिर्फ 15 पैसे जनता तक पहुंचते हैं और राहुल गांधी कहते हैं कि सिर्फ 10 पैसे पहुंचते हैं। याने टैक्स के नाम पर दिया गया 90 प्रतिशत पैसा अपने आप काला हो जाता है, अर्थात सरकार को टैक्स देना अपने पैसे को काला धन बनाना है। काला धन तो वह है, जिसे हमारे नेता और नौकरशाह अपनी सुख–सुविधाओं पर खर्च करते हैं और जो रिश्वत, तस्करी, ब्लैकमेल, दादागीरी, अवैध दलाली और चोरी–डकैती से कमाया जाता है। यह निकृष्टतम काला धन है।

हमारे देश में 45 तरह के टैक्स हैं, जिनमें सबसे बुरा आयकर है। आय में से 30 प्रतिशत की कटौती शुद्ध लूट–पाट है, सरकारी लूट–पाट! सरकार का खर्च तो सिर्फ 3 प्रतिशत के टैक्स से भी चल सकता है। हर साल 7–8 लाख करोड़ रूपए का टैक्स उगाहा जाता है। अगर विदेशों में जमा काला धन वापस आ जाए तो अगले 8–10 साल तक भारत में किसी को भी कोई टैक्स देने की जरूरत नहीं है।

70 लाख करोड़ रूपए भारत लौट आएं तो भारत का हर नागरिक एक ही रात में लखपति बन जाए। भारत पांच साल में ही यूरोप से अधिक उन्नत बन

जाए। भारत में सक्रिय तथाकथित काले–धन का कुछ न कुछ सदुपयोग अवश्य होता रहता है लेकिन विदेशों में छिपाया गया काला धन विनाशकारी भूमिका निभाता है। वह पैसा आतंकवाद, बड़ी रिश्वतखोरी, तस्करी, चुनावी, भ्रष्टाचार और नकली विदेशी निवेश के काम आता है। उसे वापस लाने में सरकार आनाकानी क्यों कर रही है?

सरकार पर जन–आंदोलनों का इतना दबाव बढ़ गया है कि वह थोड़ी–बहुत हिलती–डुलती जरूर दिखाई पड़ती है लेकिन उसने अभी तक विदेशों में चल रहे काले खातों के नाम तक उजागर नहीं किए हैं। वह जरा अमेरिका और स्वीडन की सरकारों से कुछ सीखें। कहीं ऐसा तो नहीं कि उस काली सूची में हमारे कुछ बड़े नेताओं और नौकरशाहों के नाम सबसे ऊपर चमक रहे हों?

सरकार पर जन–आंदोलनों का इतना दबाव बढ़ गया है कि वह थोड़ी–बहुत हिलती–डुलती जरूर दिखाई पड़ती है लेकिन उसने अभी तक विदेशों में चल रहे काले खातों के नाम तक उजागर नहीं किए हैं। वह जरा अमेरिका और स्वीडन की सरकारों से कुछ सीखें। कहीं ऐसा तो नहीं कि उस काली सूची में हमारे कुछ बड़े नेताओं और नौकरशाहों के नाम सबसे ऊपर चमक रहे हों?

देश में लगभग साढ़े तीन करोड़ लोग टैक्स देते हैं। इनमें से तीन करोड़ लोगों को टैक्स के जाल से बाहर किया जाए और मोटी आयवाले सिर्फ 50–60 लाख लोगों से सिर्फ 10 प्रतिशत टैक्स लिया जाए तो सरकार की झोली भर जाएगी। देश में आर्थिक ईमानदारी का माहौल बनेगा और विदेशों से काला धन लौटा लें तो कहने ही क्या? टैक्स न देनेवालों पर तब यदि ज्यादा सख्ती की जाएगी तो वह भी उचित मानी जाएगी। यह तर्क बहुत गलत है कि हम बाहरी काला धन इसलिए वापस नहीं लाएंगे कि हम अंदरूनी काले धन पर लगाम नहीं लगा पा रहे हैं। ❑

सदस्यता संबंधी सूचना

मान्यवर,

स्वदेशी पत्रिका आज देश में चल रहे स्वदेशी आंदोलनों का स्थापित प्रतीक बन चुकी है। पिछले कई वर्षों से स्वदेशी पत्रिका ने असंगत एवं एकतरफा वैश्वीकरण, जनविरोधी आर्थिक उदारीकरण के विरोध एवं वैकल्पिक और रचनात्मक स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में एक सक्रिय प्रहरी के नाते हमेशा आपको जागरूक बनाया है एवं आपसे संवाद स्थापित किया है। विगत कालखंड में इन सभी मुद्दों पर हमें आप जैसे सजग पाठकों का अपेक्षित सहयोग भी मिलता रहा है और भविष्य में भी मिलेगा ऐसा विश्वास है।

आपसे आग्रह है कि स्वदेशी पत्रिका की आपकी सदस्यता अवधि यदि समाप्त हो गई हो तो कृपया पिछले समय से आगामी वर्ष तक की राशि धनादेश (मनीआर्डर), चेक एवं मांग पत्र (डिमांड ड्राफ्ट) के माध्यम से शीघ्र भेजने की कृपा करें। पत्रिका के लिफाफे के उपर चिपकाए गए पते की प्रथम पंक्ति में सदस्यता अवधि अंकित है। आप अपनी सदस्यता राशि "स्वदेशी पत्रिका" के नाम पत्रिका के कार्यालय के पते पर भेज सकते हैं। सदस्यता अद्यतन न हो पाने की स्थिति में वित्तीय कारणों से पत्रिका आगे जारी रखना कठिन होगा।

सदस्यता शुल्क निम्न प्रकार है।

स्वदेशी पत्रिका	वार्षिक	आजीवन
हिन्दी	100/–	1000/–
अंग्रेजी	100/–	1000/–

हमें आपका सहयोग स्वदेशी आंदोलन को राष्ट्रव्यापी एवं जनोन्मुखी बनाने में प्रमुख भूमिका निभाएगा। कृपया स्वदेशी पत्रिका स्वयं भी पढ़ें एवं अन्य को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। पत्रिका के संबंध में अपना निष्पक्ष विचार हमें अवश्य भेजें।

पता : स्वदेशी पत्रिका कार्यालय, 'धर्मक्षेत्र' शिव शक्ति मंदिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली–22

महंगाई के दौर में जरूरी है बचत करना

हमें इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि विकसित देशों की तरह हमारे यहां सामाजिक सुरक्षा का ताना-बाना नहीं है। सेवानिवृत्त हो जाने पर व्यक्ति को अपनी बचत के बूते ही गुजारा करना पड़ता है। विकसित देशों में सरकार किसान व गरीब जनता तथा विभिन्न जरूरतमंद वर्ग को प्रत्यक्ष या परोक्ष आर्थिक सहायता देती है। इस दृष्टि से भारत अभी बहुत पीछे है। ऐसे में निश्चित रूप से छोटी बचत योजनाओं पर ब्याज दर बढ़ाना प्रशंसनीय है।

■ जयंतीलाल भंडारी

भारत में कम आय वर्ग के परिवारों की बड़ी संख्या के कारण बचत की प्रवृत्ति के कई लाभ हैं। ये लाभ न केवल बचत करने वाले परिवारों के लिए है, बल्कि समाज व अर्थव्यवस्था के लिए भी है। जहां तीन वर्ष पूर्व 2008 की वैश्विक मंदी का भारत पर कम असर होने के पीछे भारतीयों की बचत महत्वपूर्ण मानी गई थी, वहीं अब अमेरिका व यूरोप से शुरू हुई दोहरी मंदी के बीच भी भारतीयों की बचत महत्वपूर्ण सिद्ध हो रही है। ऐसे में बचत को प्रोत्साहन देना जरूरी है।

इस समय पूरे देश में यह अनुभव किया जा रहा है कि पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टिकोण से खुशहाली के लिए छोटी बचतों को बढ़ाया जाना जरूरी है। इस परिप्रेक्ष्य में हाल ही में बीते वर्ष दिसम्बर, में डाकघर बचतों पर ब्याज दरों में जो वृद्धि की गई है, वह प्रशंसनीय है।

यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि सरकार ने सार्वजनिक भविष्य निधि (पीपीएफ) और तमाम डाकघर बचत योजनाओं पर ब्याज में अच्छी-खासी बढ़ोतरी की है। ब्याज दरों में वृद्धि के इस निर्णय से छोटी बचत स्कीमें अब ज्यादा आकर्षक हो गई है। इन स्कीमों पर रिटर्न भी अब बाजार दरों के अनुरूप किया गया है।

श्यामला गोपीनाथ समिति की सिफारिशों पर फैसला करते हुए वित्त मंत्रालय ने विभिन्न बचत योजनाओं में कम से कम 0.5 फीसद ब्याज बढ़ा दिया है। अब पोस्ट आफिस सेविंग्स एकाउंट्स (पीओएसए) पर 3.5 फीसद के बजाय 4 फीसद ब्याज मिलेगा। इसी तरह मंथली इनकम स्कीम (एमआईएस) पर 8.2 फीसद और सार्वजनिक भविष्य निधि (पीपीएफ) पर 8.6 फीसद ब्याज मिलेगा। ब्याज दरों में सर्वाधिक बढ़ोतरी एक साल की परिपक्वता अवधि वाली एफडी (फिक्सड डिपोजिट) में की गई है। इस पर ब्याज दर को मौजूदा 6.25 फीसद से बढ़ाकर 7.7 फीसद कर दिया गया है। अन्य परिपक्वता अवधि वाली एफडी पर भी ब्याज दरें अब बढ़ा दी गई हैं। इसके अलावा सरकार ने अब किसान विकास

इसमें कोई दो मत नहीं है कि बचत योजनाओं पर ब्याज बढ़ने से देश के निम्न एवं मध्यम वर्ग के परिवारों की आमदनी कुछ बढ़ेगी और उन्हें आर्थिक तौर पर राहत मिलेगी। महंगाई के कारण इन परिवारों की आय की तुलना में व्यय बढ़ते जा रहे हैं। बढ़ती महंगाई करोड़ों लोगों की जेब खाली कर रही है और लोग कर्ज के बढ़ते भार से भी चिंतित हो रहे हैं।

स्थिति यह है कि देश में महंगाई कागजों में भले घटती दिखे लेकिन हकीकत में कम होने का नाम नहीं ले रही है। प्रमुख खाद्य वस्तुओं एवं सब्जियों की बढ़ती कीमतों ने लोगों की दैनिक जीवन की कठिनाई बढ़ाई है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि जिस भारतीय मध्यम तबके को बचत करने वाले वर्ग के रूप में जाना जाता है, वह भी बचत पर कम ब्याज पाने के कारण कठिनाई का अनुभव कर रहा था। लगातार बढ़ती कीमतें मध्य वर्ग के परिवार का भी बजट बिगाड़ रही हैं और उनकी जेब लगातार खाली कर रही हैं। ऐसे में बचत पर ब्याज बढ़ने से मध्य वर्ग को भी राहत मिलेगी।

पत्र (केवीपी) को समाप्त करने का निर्णय लिया है। इसी तरह सरकार ने एमआईएस और एनएससी की परिपक्वता अवधि को मौजूदा छह साल से घटाकर पांच साल करने का निर्णय लिया है।

यही नहीं सरकार ने 10 साल की परिपक्वता अवधि वाली नेशनल सेविंग्स

स्कीम (एनएससी) भी शुरू की है। सरकार ने पीपीएफ सेविंग्स में सालाना निवेश की सीमा को भी मौजूदा 70 हजार रुपये से बढ़कर एक लाख रुपये कर दिया है। भारत में कम आय वर्ग के परिवारों की बड़ी संख्या के कारण बचत की प्रवृत्ति के कई लाभ हैं। ये लाभ न केवल बचत करने वाले परिवारों के लिए हैं, बल्कि समाज व अर्थव्यवस्था के लिए भी हैं। जहां तीन वर्ष पूर्व वर्ष 2009 की वैश्विक मंदी का भारत पर कम असर होने के पीछे भारतीयों की बचत महत्वपूर्ण मानी गई थी, वहीं अब अमेरिका व यूरोप से शुरू हुई दोहरी मंदी के बीच भी भारतीयों की बचत महत्वपूर्ण सिद्ध हो रही है।

ऐसे में बचत को प्रोत्साहन देना जरूरी है। लेकिन बचत पर ब्याज संबंधी आंकड़े बता रहे हैं कि सेविंग्स पर मिलने वाला ब्याज पिछले चार-पांच वर्षों में बहुत कम हो गया है और जो बचत योजनाएं चल रही हैं, उनमें ब्याज की कमाई का आकर्षण बहुत कम है। पिछले कुछ वर्षों में कम ब्याज दरों के कारण स्थिति यह निर्मित हुई कि देश के उन तमाम छोटे निवेशकों का दूरगामी आर्थिक प्रबंधन चरमरा गया है जो अपनी छोटी बचतों के जरिये जिंदगी के कई महत्वपूर्ण कामों को निपटाने की व्यवस्था सोचे हुए हैं।

हमारे देश के अधिसंख्य लोग ऐसे हैं जो बेटी की शादी, सामाजिक रीति-रिवाजों की पूर्ति, बच्चों की पढ़ाई और सेवानिवृत्ति के बाद के जीवन के लिए अपनी बचतों पर ही निर्भर करते हैं। लेकिन छोटी बचत पर हुए लगातार प्रहार के कारण लघु बचतों के निवेश पर निर्भर रहने वाले सामान्य व नौकरीपेशा वर्ग पर भारी बोझ आ पड़ा है। अब छोटी बचत योजनाओं पर ब्याज बढ़ना जहां सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से लाभप्रद है, वहीं इससे लोगों को महंगाई की पीड़ा से भी कुछ बचाव करने में सहायता मिलेगी।

इसमें कोई दो मत नहीं है कि बचत योजनाओं पर ब्याज बढ़ने से देश के निम्न एवं मध्यम वर्ग के परिवारों की आमदनी कुछ बढ़ेगी और उन्हें आर्थिक तौर पर राहत मिलेगी। महंगाई के कारण इन परिवारों की आय की तुलना में व्यय बढ़ते जा रहे हैं। बढ़ती महंगाई करोड़ों लोगों की जेब खाली कर रही है और लोग कर्ज

के बढ़ते भार से भी चिंतित हो रहे हैं।

स्थिति यह है कि देश में महंगाई कागजों में भले घटती दिखे लेकिन हकीकत में कम होने का नाम नहीं ले रही है। प्रमुख खाद्य वस्तुओं एवं सब्जियों की बढ़ती कीमतों ने लोगों की दैनिक जीवन की कठिनाई बढ़ाई है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि जिस भारतीय मध्यम तबके को बचत करने वाले वर्ग के रूप में जाना जाता है, वह भी बचत पर कम ब्याज पाने के कारण कठिनाई का अनुभव कर रहा था।

लगातार बढ़ती कीमतें मध्य वर्ग के परिवार का भी बजट बिगाड़ रही हैं और उनकी जेब लगातार खाली कर रही हैं। ऐसे में बचत पर ब्याज बढ़ने से मध्य वर्ग को भी राहत मिलेगी। बीते वर्षों में देश में बचत योजनाओं पर कम ब्याज दर ने बचत और निवेश दोनों को प्रभावित किया है। बचत पर आकर्षक ब्याज होने से लोग कम जरूरी खर्च को छोड़कर बचत बढ़ाते हैं। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि हमारे देश में जो बचत अब भी सामाजिक सुरक्षा का प्रमुख आधार बनी हुई है, वह कम ब्याज दर से प्रभावित हो रही है।

हमें इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि विकसित देशों की तरह हमारे यहां सामाजिक सुरक्षा का ताना-बाना नहीं है। सेवानिवृत्त हो जाने पर व्यक्ति को अपनी बचत के बूते ही गुजारा करना पड़ता है। विकसित देशों में सरकार किसान व गरीब जनता तथा विभिन्न जरूरतमंद वर्ग को प्रत्यक्ष या परोक्ष आर्थिक सहायता देती है। इस दृष्टि से भारत अभी बहुत पीछे है।

ऐसे में निश्चित रूप से छोटी बचत योजनाओं पर ब्याज दर बढ़ाना प्रशंसनीय है। डाकघर की छोटी बचत योजनाओं के आकर्षक हो जाने से जहां इन योजनाओं में निवेश करके लाभ लेने वाले निम्न एवं मध्यम आय वर्ग के लोगों की संख्या बढ़ेगी वहीं इसका फायदा राज्य सरकारों को भी मिलेगा।

डाकघर बचतों में निवेश का 90 फीसद राज्य संबंधित राज्य सरकार को करीब 9.5 फीसद ब्याज दर पर कर्ज के रूप में दिया जा सकता है। छोटी बचत योजनाओं पर ब्याज दरें बढ़ने के साथ कर्मचारी भविष्य निधि संगठन (ईपीएफओ) द्वारा भी संगठित क्षेत्र के कर्मचारियों को उनकी भविष्य निधि पर वर्तमान 9.5 फीसद ब्याज दर बढ़ाकर 10 फीसद किए जाने की संभावनाएं बढ़ी हैं।

महंगाई से राहत और सामाजिक सुरक्षा की बढ़ती जरूरतों के परिप्रेक्ष्य में निम्न एवं मध्यम वर्ग के करोड़ों परिवारों को भविष्य में बचत योजनाओं पर ब्याज दर में वृद्धि जैसे आर्थिक-सामाजिक खुशहाली के कई और कारगर सरकारी कदमों की अपेक्षा रहेगी। ऐसे कदमों से देश के करोड़ों लोगों के चेहरों पर थोड़ी मुस्कराहट आ सकेगी। ❑

:: सूचना ::

स्वदेशी पत्रिका साम्राज्यवाद के खिलाफ एक सशक्त आवाज है। पत्रिका को ऐसे लोगों से प्रतिक्रियाएं, रिपोर्ट या आलेख की अपेक्षा है जो राष्ट्रहित में सोचते हैं और देश के स्वावलम्बन के लिए कुछ करने की इच्छा रखते है। जरूरी नहीं कि आप पत्रकार या लेखक ही हों, अपने आसपास से जुड़ी चीजों के प्रति आपकी संवदेना है और आप शब्दों में उसे लिख सकते है तो हमें अवश्य लिख भेजें। साथ ही स्वदेशी पत्रिका में छपे लेख आपको कैसे लगते हैं, क्या आप इसमें कुछ नए विषयों का समायोजन चाहते हैं कृपया हमें अवश्य अवगत कराएं। आपके विचारों को हम प्राथमिकता के साथ प्रकाशित करने का भी प्रयास करेंगे।

हमारा पता है :-

संपादक

स्वदेशी पत्रिका

'धर्मक्षेत्र', सेक्टर-8, बाबू गेनू मार्ग, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली-110022

नए रोजगार क्षेत्रों में बढ़े भागीदारी

महिलाओं के किन नए रोजगारों पर अधिक ध्यान केंद्रित किया जाए, इसके लिए कुछ मानदंड निर्धारित होने चाहिए। जरूरी है इनमें न्यायसंगत आय हो, प्रगति के पर्याप्त अवसर हों, कार्य महिलाओं की गरिमा व आत्म-सम्मान के अनुकूल हो। पर संस्थान के अनुभवों बताते हैं कि सामाजिक संकीर्णताओं से जुड़ी कई बड़ी बाधाएं पार करने के लिए काफी मेहनत करनी होगी। सामाजिक कार्यकर्ताओं के जमीनी अनुभव बताते हैं कि बड़ी उपलब्धियों की संभावना के साथ कई कठिन चुनौतियों के लिए भी तैयार रहना चाहिए, तभी सफलता मिल पाएगी।

■ भारत डोगरा

महंगाई व अन्य कारणों से शहरी निर्धन परिवारों में महिलाएं आजीविका के नए स्रोत तलाश रही हैं। ऐसे अनेक परिवार जो पहले ठीक से गुजर-बसर कर लेते थे अब न केवल बढ़ती महंगाई से त्रस्त हैं बल्कि विभिन्न कारणों से अनेक परिवारों की रोजी-रोटी भी खतरे में पड़ी है। कहीं झोपड़ियां तोड़ने के कारण लोगों को आजीविका के स्थान से दूर जाना पड़ा, तो कहीं नई नीतियों व नियमों के कारण उनके रोजगार ठप हो गए।

ऐसी स्थिति में रोजगार तलाशने वाली निम्न और निम्न मध्यवर्गीय महिलाओं की संख्या खासी बढ़ी है। कुछ परिवार सामाजिक बुराइयों के कारण भी संकटग्रस्त हुए हैं जैसे शराबखोरी व दहेज का प्रकोप। इनसे उपजी समस्याओं का सामना करने के लिए प्रायः इन्हें ऊंचे ब्याज पर कर्ज लेना पड़ता है और कुछ को न्यूनतम जरूरतें पूरी करने के लिए भी कर्ज लेना पड़ता है। ऐसे में ऊंचे ब्याज के कारण गरीबी व कर्ज के दुष्चक्र से बाहर निकलना कठिन हो जाता है। कुछ परिवारों व आस-पड़ोस के माहौल के कारण भी अनेक महिलाएं रोजगार के नए अवसरों की जरूरत महसूस करती हैं। और कोई निश्चित अवसर मिलने पर ही उन्हें घर से बाहर निकलने का अवसर नियमित तौर पर मिलता है।

रोजगार तलाशने वाली निम्न और निम्न मध्यवर्गीय महिलाओं की संख्या खासी बढ़ी है। कुछ परिवार सामाजिक बुराइयों के कारण भी संकटग्रस्त हुए हैं जैसे शराबखोरी व दहेज का प्रकोप। इनसे उपजी समस्याओं का सामना करने के लिए प्रायः इन्हें ऊंचे ब्याज पर कर्ज लेना पड़ता है और कुछ को न्यूनतम जरूरतें पूरी करने के लिए भी कर्ज लेना पड़ता है। ऐसे में ऊंचे ब्याज के कारण गरीबी व कर्ज के दुष्चक्र से बाहर निकलना कठिन हो जाता है।

बदलते सामाजिक परिवेश में स्त्री शिक्षा जागरूकता के चलते भी नए रोजगार स्रोतों की ललक बढ़ी है। स्त्रियां अब परंपरागत रोजगार के दायरे से बाहर निकल कुछ नया करना व आजमाना चाहती हैं। सिलाई-कढ़ाई जैसे रूटीन रोजगारों की उपयोगी भूमिका यथावत है पर महिलाएं उससे आगे भी खोज रही हैं।

अब तक स्लम बस्तियों में निर्धन परिवारों के लिए घरेलू कर्मी या डोमेस्टिक वर्कर के रूप में आजीविका सबसे बड़ा स्रोत रही है पर महिलाओं की शिकायत है कि इससे उन्हें न तो न्यायसंगत मजदूरी मिलती है, न प्रगति के अवसर उपलब्ध

होते हैं। कार्य स्थितियां भी आत्मसम्मान के अनुकूल नहीं होती हैं। फैक्ट्रियों में नए रोजगार अवश्य उत्पन्न हुए हैं, पर प्रायः यहां महिला मजदूरों का काफी शोषण होता है। अतः कुछ महिला–संगठनों ने ठानी है कि आर्थिक कठिनाई झेल रहे शहरी परिवारों की महिलाओं के रोजगार के लिए नए चुनौती भरे, संभावना भरे अवसर उत्पन्न किए जाएं ताकि उनकी आकांक्षाओं और क्षमताओं को रचनात्मक अभिव्यक्ति मिल सके।

बाबा आमटे कहते थे कि निर्धन परिवारों को दया नहीं बल्कि उचित अवसर चाहिए। वास्तव में निर्धन परिवारों में जुझारूपन है, क्षमता है, ललक है, उत्साह है पर प्रायः पूंजी, साधन, शिक्षा, जानकारी आदि के अभाव में उनका सारा उत्साह कुंद पड़ जाता है और वे संकीर्ण दायरे से बाहर नहीं निकल पाते हैं। अतः यह बहुत जरूरी है कि क्षमता, उत्साह और जरूरतों को जोड़ने वाले अवसर समाज में उत्पन्न किए जाएं।

महिलाओं के लिए रोजगार के नए स्रोतों पर कार्य करने का यह अर्थ नहीं है कि जिन रोजगारों में महिलाएं पहले ज्यादा रही हैं उन्हें उपेक्षित किया जाए। बल्कि घरेलू कर्नियों के न्याय व सुरक्षा के लिए कार्य करना तो बहुत जरूरी है। इसी तरह सिलाई–कढ़ाई जैसे घर में ही उपलब्ध कार्य की गुणवत्ता और आय दोनों को सुधारा जा सकता है व इन महिलाओं की सामाजिक सुरक्षा के लिए भी बहुत कुछ किया जा सकता है। महिला फैक्ट्री मजदूरों को शोषण से बचाना बहुत जरूरी है।

इन सबके साथ ही रोजगारों के नए अवसर तलाशना बहुत जरूरी है। कारण महंगाई के जमाने में पहले से चले आ रहे रोजगार के स्रोत काफी नहीं हैं दूसरे, महिलाओं के नए रोजगारों में प्रवेश करने का व्यापक सामाजिक महत्व भी है। इससे सामाजिक गतिरोध टूटता है, फैलाए गए मिथक टूटते हैं।

प्रायः निर्धन बस्तियों में महिलाओं को दो–चार रोजगारों तक सीमित कर दिया जाता है पर जब उनकी योग्यता, प्रतिभा और कुशलता नए क्षेत्रों में उजागर होती है तो फैलाए गए मिथक टूटते हैं। यानी समाज की रचनात्मक क्षमता बढ़ती है और महिलाओं की क्षमता उजागर होने के बेहतर अवसर मिलते हैं। इसके लिए जरूरी है उचित जानकारी पहुंचाने, प्रशिक्षण व्यवस्था करने व प्रशिक्षण को नए रोजगारों से जोड़ने पर नियोजित ढंग से कार्य करने की।

एक सामाजिक फाउंडेशन की सेक्रेटरी का मानना है कि इस कार्य को लिंग आधारित भेदभाव समाप्त करने व न्यायसंगत समाज बनाने के व्यापक उद्देश्यों से जोड़कर आगे बढ़ाना चाहिए।

उनका मानना है कि महिलाओं के किन नए रोजगारों पर अधिक ध्यान केंद्रित किया जाए, इसके लिए कुछ मानदंड निर्धारित होने चाहिए। जरूरी है इनमें न्यायसंगत आय हो, प्रगति के पर्याप्त अवसर हों, कार्य महिलाओं की गरिमा व आत्म– सम्मान के अनुकूल हो। पर संस्थान के अनुभवों बताते हैं कि सामाजिक संकीर्णताओं से जुड़ी कई बड़ी बाधाएं पार करने के लिए काफी मेहनत करनी होगी।

सामाजिक कार्यकर्ताओं के जमीनी अनुभव बताते हैं कि बड़ी उपलब्धियों की संभावना के साथ कई कठिन चुनौतियों के लिए भी तैयार रहना चाहिए, तभी सफलता मिल पाएगी। ❑

वास्तव में निर्धन परिवारों में जुझारूपन है, क्षमता है, ललक है, उत्साह है पर प्रायः पूंजी, साधन, शिक्षा, जानकारी आदि के अभाव में उनका सारा उत्साह कुंद पड़ जाता है और वे संकीर्ण दायरे से बाहर नहीं निकल पाते हैं। अतः यह बहुत जरूरी है कि क्षमता, उत्साह और जरूरतों को जोड़ने वाले अवसर समाज में उत्पन्न किए जाएं।

सुनिए मधुमक्खी का संदेश

मधुमक्खियां जो मनुष्य के निकट हैं, लेकिन जैसे–जैसे पर्यावरण में बदलाव आता है ये मधुमक्खियां उत्तर की ओर खिसकने लगती हैं। दो, चार, दस सालों में यह बदलाव भले ही खास न दिखता हो लेकिन बीस तीस सालों में बदलाव साफ दिखते हैं जैसे पहाड़ की तराई में दिख रहा है। चिंता तो होती ही है कि क्या एक दिन ऐसा भी आयेगा जब धरती के इस नखलिस्तान पर मनुष्य अकेला ही रह जाएगा, अपने विज्ञान के साथ?

■ जवाहरलाल कौल

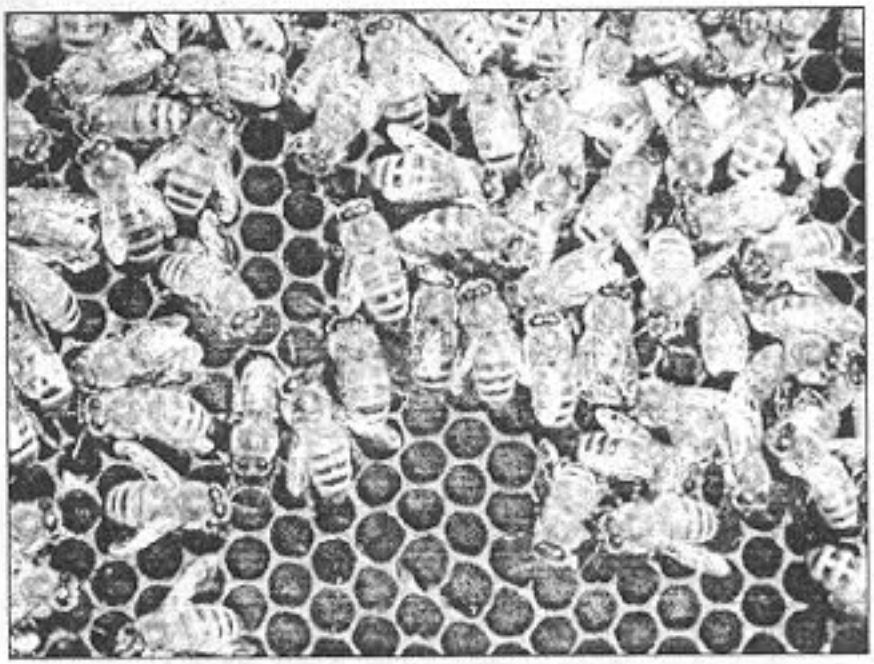

इंसान जैसे–जैसे विकसित हुआ है वह अकेला पड़ता गया है। प्रकृति में मौजूद दूसरे जीवजंतु, प्राणी, वनस्पतियां सब उससे लगातार दूर होते गये हैं। ऐसा कोई एक दिन में नहीं हुआ लेकिन यह क्रम कभी रुका भी नहीं। जीव–जंतु तो न जाने कब के हमारे लिए पालतू हो गये थे। मनुष्य ने सबसे पहले जिस जानवर को पालतू बनाया वह संभवतः गाय थी। उसके पहले तक का जो इतिहास हम देखते हैं वह यही है कि अस्तित्व में बने रहने के लिए मनुष्य भी पशुओं को उसी तरह मारता था जैसे एक पशु दूसरे को मारता था।

लेकिन जिसे विकसित मनुष्य कह सकते हैं उसने जो कुछ किया उससे केवल पशुओं के अस्तित्व पर ही नहीं बल्कि वनस्पतियों के अस्तित्व पर भी संकट आ गया है। पहले मनुष्य ने पशुओं को मारा होगा लेकिन पशु उससे दूर नहीं भागे थे। लेकिन आज प्रकृति में मौजूद जीव धीरे–धीरे मनुष्य से दूर होते जा रहे है। याद करिए आखिरी बार आपने कब किसी घोसले को देखा था? याद करिए कि आपने अपने आस–पास किसी मधुमक्खी के छत्ते को कब देखा था?

प्रकृति का संदेश देने का तरीका मनुष्य द्वारा ईजाद किये गये तरीकों से श्रेष्ठ है ही। इस पर तो शायद ही कोई सवाल उठाए। इंसानों की पिछली पीढ़ियां जब विज्ञान को इतने अवैज्ञानिक तरीके से इस्तेमाल नहीं करती थीं तब हम प्रकृति के उपकरणों के सहारे प्रकृति के संदेशों को ज्यादा आसानी से समझ लेते थे। लेकिन हम जितने वैज्ञानिक हुए उतना ही हमने अपने उपकरणों पर भरोसा करना शुरू कर दिया।

इन्तहा तो तब हो जाती है जब हम भावनात्मक रोगों को मापने के लिए भी मशीनों का इस्तेमाल करने लगते हैं। क्या भावनाओं को मशीन से नापा जा सकता है? लेकिन पिछली एक सदी को आप देखिए तो हमारे विकास की वैज्ञानिक सोच ने मनुष्य को लगभग खारिज ही कर

प्रकृति का संदेश देने का तरीका मनुष्य द्वारा ईजाद किये गये तरीकों से श्रेष्ठ है ही। इस पर तो शायद ही कोई सवाल उठाए। इंसानों की पिछली पीढ़ियां जब विज्ञान को इतने अवैज्ञानिक तरीके से इस्तेमाल नहीं करती थीं तब हम प्रकृति के उपकरणों के सहारे प्रकृति के संदेशों को ज्यादा आसानी से समझ लेते थे।

दिया है, खारिज करने और खारिज होने का एक अंतहीन सिलसिला सा चल निकला है जो कहीं रूकता दिखाई नहीं देता।

पहले मनुष्य ने जानवरों को खारिज किया फिर जन्तुओं और पौधों को भी खारिज कर दिया। ऐसा नही है कि यह खारिज करने का सिलसिला अकेले मनुष्य की ओर से ही चलाया जा रहा है। पशु–पक्षी, जीवजंतु और पौधे भी हमको खारिज कर रहे हैं। पहाड़ की तराई में कोई 25–30 साल पहले जब मैं जाता था तो वहां मधुमक्खियों का छत्ता आसानी से दिखता था, अब नहीं दिखता।

वैसे तो यह कोई बड़ी बात नहीं है। किसी अमराई में मधुमक्खी का छत्ता दिखना या न दिखना कोई निशानी भी हो सकता है इसे तो हमने शायद मानना ही छोड़ दिया है। वैसे भी मनुष्य लगातार असंवेदनशील हुआ है इसलिए आस–पास के अस्तित्व के प्रति भी वह पूरी तरह से उदासीन हो गया है। ऐसे में कहीं मधुमक्खी का छत्ता नहीं दिखता तो हम उसको किसी संकेत के रूप में लेते भी नहीं है, लेकिन यह संकेत है और बहुत गहरा संकेत है।

स्नो लाईन की तर्ज पर आप इसे एक बी–लाईन मान लीजिए। वैज्ञानिक अवधारणा है कि बर्फ के जमने, पिघलने और पुनः जमने की एक सतत प्रक्रिया जिन इलाकों में चलती है मध्य ध्रुव और समुद्र तल के आधार पर उसकी जो रेखा खींची जाती है उसे स्नो लाईन कहते हैं। क्योंकि अंटार्कटिक में बर्फ साल भर जमी रहती है इसलिए स्नो लाईन का केन्द्र अंटार्कटिक है। इसी रेंज में जब आप हिमालय में आते हैं यह स्नो लाईन कोई एक निश्चित उचाई पर चली जाती है।

जैसे–जैसे धरती गरम होती है और पर्यावरण में परिवर्तन होते हैं यह स्नो–लाईन भी ऊपर खिसकती जाती है।

आज हम जिस जलवायु परिवर्तन को लेकर चिंतित हैं उसके मूल में भी यही बात है कि स्नो–लाईन धीरे–धीरे ऊपर खिसक रही है जिसके परिणामस्वरूप ग्लेशियर पिघल तो रहे हैं लेकिन दोबारा से उनके जमने की प्रक्रिया थम रही है। यानी कल अगर हिमालय के ग्लेशियर 7000 से 10,000 फीट पर जमते थे तो आज यह ऊंचाई 15–17 हजार फीट पर जा पहुंची है।

इस रेगिस्तान की सूचना पहाड़ में ग्लेशियर दे रहे हैं तो मैदानी इलाकों में मधुमक्खियों के छत्ते हमें बता रहे हैं कि हम संकट के मुहाने पर है।

अब 7 हजार से 15 हजार फीट के बीच जो ग्लेशियर जमते थे वे अब नहीं जमेंगे। इसका पर्यावरण पर यह प्रभाव होगा कि ग्लेशियरों के भरोसे बहनेवाली नदियां सूखेंगी, वनस्पतियों के गुण–धर्म में बदलाव आयेगा और हरियाली वाले आज के बहुत से इलाके आनेवाले दिनों के रेगिस्तान में परिवर्तित हो जाएंगे।

इस रेगिस्तान की सूचना पहाड़ में ग्लेशियर दे रहे है तो मैदानी इलाकों में मधुमक्खियों के छत्ते हमें बता रहे हैं कि हम संकट के मुहाने पर है। मधुमक्खियों के छत्ते इसलिए क्योंकि पर्यावरण का इससे सुंदर संकेतक दूसरा होना मुश्किल है। इन छत्तों को आप प्रकृति की सबसे अनूठी घड़ी भी कह सकते है।

मधुमक्खियां अपने आस–पास के दो तीन किलोमीटर से पराग इकट्ठा करती हैं। यहां यह जान लेना महत्वपूर्ण है कि हम केवल उन मधुमक्खियों की बात कर रहे हैं जो मानवीय बस्ती के आस–पास छत्ते लगाती हैं। यानी वे मधुमक्खियां जो मनुष्य के निकट हैं, लेकिन जैसे–जैसे पर्यावरण में बदलाव आता है ये मधुमक्खियां उत्तर की ओर खिसकने लगती हैं।

दो, चार, दस सालों में यह बदलाव भले ही खास न दिखता हो लेकिन बीस तीस सालों में बदलाव साफ दिखते है जैसे पहाड़ की तराई में दिख रहा है। चिंता तो होती ही है कि क्या एक दिन ऐसा भी आयेगा जब धरती के इस नखलिस्तान पर मनुष्य अकेला ही रह जाएगा, अपने विज्ञान के साथ? ❑

पानी पर सोचने का समय

भूजल का गिरता स्तर एक उत्तर भारतीय घटना ही नहीं है, समूचे भारत में भूजल का स्तर लगातार खतरनाक ढंग से गिर रहा है। इस समय विडंबना यह है कि देश के आधे जिले सूखे की चपेट में हैं और सरकार के पास इसके अलावा और कोई चारा नहीं है कि वह हैंडपंप आदि लगाकर भूजल का और दोहन करे। जाहिर है इससे भूजल का स्तर और नीचे गिरेगा...

■ राजेन्द्र सिंह ठाकुर

कुछ समय पहले नासा के एक मिशन ने भारत के उत्तरी राज्यों में ग्राउण्डवाटर या भूमिगत पानी के गिरते जल स्तर के बारे में जो रहस्योद्घाटन किया है वह हमारे लिए एक बुरी खबर है। जल ही जीवन है, को सरकारी नारा नहीं है। यह एक हकीकत है।

जल के बिना जीवन चल ही नहीं सकता, जबकि जल की उपलब्धता दिनोंदिन कम होती जा रही है। पृथ्वी की कक्षा में चक्कर लगा रहे नासा के दो उपग्रहों ने जमीन के भीतर पानी की उपस्थिति का पता लगाते हुए भारत के उत्तरी राज्यों पंजाब, हरियाणा और राजस्थान में भूमिगत पानी के स्तर में भारी गिरावट दर्ज की है।

नासा के वैज्ञानिकों का कहना है कि इन राज्यों में पानी हर साल 17.7 घन किलोमीटर की दर से गायब हो रहा है जबकि सरकारी अनुमान अब तक 13.2 घन कि.मी. प्रतिवर्ष का रहा है। इस पृष्ठभूमि में योजना आयोग का वह अध्ययन और भी अधिक ध्यान खींचने वाला साबित हो जाता है जिसमें कहा गया है कि अगले 35 से 40 वर्षों के बीच भारत में वर्षा जल और भू-जल की भारी कमी होने वाली है।

क्षुद्र राजनीतिक मसलों में जूझती हमारी सरकारें आज भी अभी से आगे नहीं देख पाती। जरूरत हमारी सरकारें आज और अभी से आगे नहीं देख पाती। जरूरत इस बात की है कि मानवीय अस्तित्व से जुड़े मसलों पर सोचा जाए और नीतियां बनाकर बाकायदा परिणामों पर नजर रखी जाए। पंजाब और हरियाणा उन राज्यों में से है जिन्होंने हरित क्रांति को सचमुच अपनी जमीन पर उतारा है।

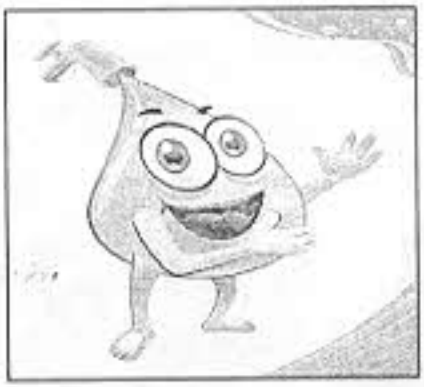

पर नासा के वैज्ञानिकों का कहना है कि धान का कटोरा माने जाने वाले उत्तर भारत के राज्यों खासकर पंजाब और हरियाणा में भूजल हर साल एक फुट नीचे गिरता जा रहा है। इस पानी का 90 फीसदी हिस्सा सिंचाई के काम में खर्च हो रहा है।

तो क्या हमें सिंचाई की अपनी नीति पर नए सिरे से विचार करना चाहिए? भारत में कृषि काफी हद तक मानसून पर निर्भर है लेकिन शहरी विकास के मामले में दिखाई गई कल्पनाहीनता के कारण वर्षा जल का समुचित उपयोग नहीं हो पाता। वह प्रायः बाढ़ का रूप लेकर बेकार चला जाता है। वह रिसकर उतना पृथ्वी में नहीं पहुँच पाता जितना कि हर साल कुओं, हैंडपंपों, ट्यूबवैलों के जरिए जमीन के अंदर से खींच लिया जाता है।

भूजल का गिरता स्तर एक उत्तर भारतीय घटना ही नहीं है, समूचे भारत में भूजल का स्तर लगातार खतरनाक ढंग से गिर रहा है। इस समय विडंबना यह है कि देश के आधे जिले सूखे की चपेट में हैं और सरकार के पास इसके अलावा और कोई चारा नहीं है कि वह हैंडपंप आदि लगाकर भूजल का और दोहन करे। जाहिर है इससे भूजल का स्तर और नीचे गिरेगा।

सरकार खड़ी हुई फसलों को बचाने के लिए इस साल ट्यूबवैलों पर वैसे भी कहीं ज्यादा आश्रित होती जा रही है।

पृथ्वी पर शुरूआत में जितना पानी था, वह आज भी उतना ही है। दिक्कत यह है कि मुश्किल से 3-4 प्रतिशत पानी ही हमारे काम का है। शेष पानी या तो समुद्रों में है या फिर ध्रुवों और पहाड़ों पर बर्फ के रूप में जमा है। मनुष्यता वर्षा जल और भूजल पर ही आश्रित है। भूजल को आप पानी का एक विराट बैंक कह सकते हैं, जो बढ़ती मानवीय गतिविधियों के कारण लगातार पूँजी विहीन हो रहा है। जरूरत इस बात की है कि जितना पानी हम जमीन से हर साल निकालें, उतना ही उसे वापस भी करते रहें क्योंकि अब समय आ गया है जब पानी और सिर्फ पानी के बारे में सोचा जाए और पानी के प्रश्न को राष्ट्रीय मंचों पर तरजीह देनी शुरू की जाए, क्योंकि पानी नहीं रहा तो जीवन भी कैसे बचेगा। ❑

अहित करने वाले आर्थिक सुधार

स्वतंत्रता के समय शिक्षा का अभाव था। तमाम गांवों में स्कूल नहीं थे। ऐसे में सरकार ने निर्णय लिया कि सरकारी स्कूलों का विस्तार किया जाएगा। हर गांव में स्कूल खोले गए और बच्चों को शिक्षा उपलब्ध हुई। जनता में शिक्षा के महत्व की समझ नहीं थी इसलिए सरकारी स्कूलों की फीस न्यून रखी गई। इस प्रलोभन से प्रभावित होकर लोगों ने शिक्षा को अपनाया। आज परिस्थितियां बदल गई हैं। जनता को शिक्षा का महत्व समझ आ गया है। छोटे गांवों में भी निजी प्राइमरी स्कूल चल रहे हैं। सरकारी स्कूलों की हालत बिगड़ गई है। सरकारी अध्यापकों की नौकरी पक्की होती है। बच्चे पास हों अथवा फेल, इससे अध्यापक के वेतन पर तनिक भी असर नहीं पड़ता है।

■ डॉ. भरत झुनझुनवाला

वर्तमान में केंद्र सरकार ने आर्थिक सुधारों को पलट दिया है। सुधारों से जनहित हासिल करने के स्थान पर मंत्रियों, नौकरशाहों एवं अमीरों का हित साधा जा रहा है। इस नीति के तीन उदाहरण सामने रखना चाहता हूँ।

पहला उदाहरण विनिवेश का है। पचास, साठ एवं सत्तर के दशक में सरकार ने अनेक सार्वजनिक उपक्रम स्थापित किए। उस समय निजी उद्योगों की इन उद्योगों को स्थापित करने की क्षमता नहीं थी। कालक्रम में परिस्थितियों में बदलाव आया है। निजी उद्योगों की क्षमता में वृद्धि हुई है। आज बड़ी कंपनियां बड़े उद्योग लगाने में सक्षम हैं।

दूसरी ओर सरकारी उपक्रमों में राजनीतिक दखल और भ्रष्टाचार व्याप्त हो गया है। जैसे एयर इंडिया की सेवा को लाभकारी रूटों से हटा लिया गया, जिससे निजी उड्डयन कंपनियों को खुला मैदान मिल गया है। सरकारी उपक्रमों में मंत्रियों के चहेतों को नौकरी पर रखा गया है। सरकारी उपक्रम घाटा देने लगे और सरकार पर बोझ बन गए हैं। इन भ्रष्ट उपक्रमों के घाटे की पूर्ति के लिए टैक्स लगाया जा रहा है।

जनता के हित के लिए स्थापित किए गए ये उपक्रम जनता के शोषण का माध्यम बन गए हैं। इस विकट परिस्थिति से निपटने के लिए तय किया गया कि सरकारी उपक्रमों से सरकार पीछे हटेगी। इस सुधार का सीधा एवं सुस्पष्ट उपाय है कि सरकारी उपक्रमों को निजी कंपनियों को बेच दिया जाए।

ऐसा करने से सरकार को दूसरे जरूरी कार्य के लिए रकम मिल गई और मंत्रियों का दखल समाप्त हो गया। इस रकम से जनता के टैक्स को घटाया जा सकता है। वाजपेयी सरकार ने इस दिशा में कारगर पहल की थी। वर्तमान सरकार ने इस प्रक्रिया को पूरी तरह उलट दिया है।

सरकारी उपक्रम को बेचने के स्थान पर उनके माइनारिटी शेयरों को बेचा जा रहा है। विनिवेश से सरकार की भूमिका

जनता के हित के लिए स्थापित किए गए ये उपक्रम जनता के शोषण का माध्यम बन गए हैं। इस विकट परिस्थिति से निपटने के लिए तय किया गया कि सरकारी उपक्रमों से सरकार पीछे हटेगी। इस सुधार का सीधा एवं सुस्पष्ट उपाय है कि सरकारी उपक्रमों को निजी कंपनियों को बेच दिया जाए।

न्यून होने के स्थान पर ज्यादा गहरी हो जाती है। उपक्रम के 51 प्रतिशत शेयर सरकार के हाथ में रहने से उपक्रम के एमडी आदि की नियुक्ति पर मंत्री का दखल बना रहता है। विनिवेश से मिली रकम का उपयोग सरकार अधिक खर्च करने में करती है।

यानी सरकार की भूमिका छोटी करने के स्थान पर सरकारी भूमिका को बढ़ाया जा रहा है। सरकार की सोच का दूसरा उदाहरण गुड्स एवं सर्विस टैक्स का है। केंद्र सरकार द्वारा माल के उत्पादन पर एक्साइज ड्यूटी एवं सर्विस टैक्स

वसूल किया जाता है। वर्तमान में इसकी अनेक दरें विद्यमान हैं।

इस कारण तमाम विवाद उत्पन्न होते हैं, जैसे उद्यमी कहता है कि उसके उत्पाद पर 8 प्रतिशत की दर से एक्साइज ड्यूटी वसूल की जानी चाहिए, जबकि विभाग कहता है कि 16 प्रतिशत की दर से देय है। विशेषज्ञों का कहना है कि एक ही दर से सभी उत्पादों एवं सेवाओं पर टैक्स वसूल किया जाए, जिससे ये विवाद समाप्त हो जाएं, अर्थव्यवस्था में गति आए और जनता को रोजगार तथा सस्ता माल उपलब्ध हो सके, परंतु होगा इसके ठीक विपरीत।

इतना सही है कि टैक्स की दरों के एकीकरण से विवाद कम हो जाएंगे, परंतु तमाम जनहितकारी उत्पादों पर टैक्स का भार बढ़ेगा। जैसे रसवंती तथा बोतलबंद शीतल पेय पर एक ही दर से टैक्स वसूल करना हो तो रसवंती पर टैक्स की दर बढ़ानी होगी। अथवा हैंडलूम पर टैक्स को बढाना होगा, जिससे आम आदमी के रोजगार नष्ट होंगे।

टैक्स संबंधी विवादों के समाप्त हो जाने से आम आदमी को जितना लाभ होगा उससे कई गुना ज्यादा नुकसान रसवंती तथा हैंडलूम पर टैक्स बढाने से होगा। एकल गुड्स तथा सर्विस टैक्स को जनहितकारी बताया जा रहा है जबकि ये जनहित के पूर्णतया विरुद्ध हैं।

तीसरा उदाहरण कल्याणकारी तंत्र का है। स्वतंत्रता के समय शिक्षा का अभाव था। तमाम गांवों में स्कूल नहीं थे। ऐसे में सरकार ने निर्णय लिया कि सरकारी स्कूलों का विस्तार किया जाएगा। हर गांव में स्कूल खोले गए और बच्चों को शिक्षा उपलब्ध हुई। जनता में शिक्षा के महत्व की समझ नहीं थी इसलिए सरकारी स्कूलों की फीस न्यून रखी गई। इस प्रलोभन से प्रभावित होकर लोगों ने शिक्षा को अपनाया।

आज परिस्थितियां बदल गई हैं। जनता को शिक्षा का महत्व समझ आ गया है। छोटे गांवों में भी निजी प्राइमरी स्कूल चल रहे हैं। सरकारी स्कूलों की हालत बिगड़ गई है। सरकारी अध्यापकों की नौकरी पक्की होती है। बच्चे पास हों अथवा फेल, इससे अध्यापक के वेतन पर तनिक भी असर नहीं पड़ता है।

अध्यापक लॉबी के वोट हासिल करने के लिए मंत्रिगण अकर्मण्य अध्यापकों के विरुद्ध कार्रवाई करने से कतराते हैं। नतीजा है कि गरीब परिवार के बच्चे सरकारी स्कूल में इस प्रलोभन से जाते हैं कि उन्हें फ्री शिक्षा मिलेगी। वहां बच्चे केवल समय गंवाते हैं।

इस समस्या का सीधा समाधान था कि सरकारी स्कूलों को बंद कर दिया जाता और इन पर व्यय की जा रही रकम को वाउचर के माध्यम से सीधे बच्चों में वितरित कर दिया जाता। इस पैसे से बच्चे अपने मनपसंद स्कूल में फीस अदा करके शिक्षा खरीद सकते थे। ऐसा करने से बच्चों को उच्च कोटि की शिक्षा मिल जाती और सरकार पर अतिरिक्त वित्तीय बोझ भी नही पड़ता।

ऐसा करने के स्थान पर सरकार ने योजना बनाई है कि सरकारी स्कूलों में दाखिला लेने वाले बच्चों को मुफ्त अनाज, भोजन, कपड़े एवं कापी–किताब दिए जाएंगे।

इन प्रलोभनों से बच्चों को अच्छे निजी स्कूलों से दूर रखा जा रहा है और उनका प्रवेश सरकारी स्कूलों में कराया जा रहा है जहां वे फेल होते हैं और अपने भविष्य को अंधेरे में डाल देते हैं। जनता में शिक्षा के प्रसार को बढ़ाने के स्थान पर शिक्षा माफिया को पोषित किया जा रहा है। वर्तमान में आर्थिक सुधारों का मतलब सरकारी नौकरों का हित और जनता का अहित मात्र रह गया है। ❑

नए नए छल करती वर्तमान सरकार

अभी पिछले दिनों सरकार ने पिछड़े वर्ग के लिए निर्धारित 27 प्रतिशत कोटे में से मात्र 4.2 प्रतिशत मुस्लिमों के लिए आरक्षित करने की घोषणा की है। यह क्या रेखांकित करता है? और क्या मजहब के आधार पर आरक्षण संविधान सम्मत है? आजाद भारत में संविधान निर्माताओं ने हाशिए पर खड़े समाज के संरक्षण और उसके उत्थान के लिए प्रावधान बनाए, किंतु संविधान सभा में जब मजहब पर आधारित आरक्षण की मांग उठी तो सात में से पांच मुस्लिम सदस्यों – मौलाना अबुल कलाम आजाद, मौलाना हिफजुर रहमान, बेगम ऐजाज रसूल, हुसैन भाई लालजी और तजामुल हुसैन ने इसका कड़ा विरोध करते हुए इसे राष्ट्रीय एकता–अखंडता के लिए खतरा बताया।

■ बलवीर पुंज

मुस्लिमों के साथ नया छल, कमरतोड़ महंगाई और सरकारी तंत्र में सार्वजनिक धन की लूट–खसोट से ऊब चुकी देश की 121 करोड़ आबादी को बीते वर्ष की आखिरी सौगात में धोखाधड़ी हाथ लगी।

देश भ्रष्टाचार से मुक्ति पाने के लिए एक सशक्त लोकपाल कानून पारित होने की आशा लगाए बैठा था, किंतु कांग्रेसनीत सरकार ने आधी रात को लोकतंत्र की हत्या कर दी। लोकसभा में पटखनी खा चुकी सरकार, राज्यसभा में अपने अल्पमत को देखते हुए पहले से ही यह पटकथा लिख चुकी थी।

परिणामस्वरूप लोकपाल बिल एक बार फिर लटक गया। यह देश के साथ विश्वासघात नहीं तो क्या है? उत्तर प्रदेश के चुनाव सिर पर हैं और जनता की भावनाओं की अनदेखी करने वाली कांग्रेस अपने खोखले वायदों से मतदाताओं को लुभाने में व्यस्त है। प्रतीक्षारत प्रधानमंत्री और कांग्रेस के युवराज राहुल गांधी दस साल में उत्तर प्रदेश का कायापलट कर देने का दावा कर रहे हैं।

उत्तर प्रदेश क्या प्राय: पूरे भारत में प्रारंभिक चालीस वर्षों तक कांग्रेस का एकछत्र राज रहा है। इतनी लंबी अवधि में जब दलित–वंचित वर्ग का उत्थान नहीं कर पाए तो एक रात दलित की बस्ती में प्रायोजित पूरी–सब्जी खाने मात्र से उनका कल्याण हो जाएगा?

सच्चाई यह है कि मुसलमानों में चार मुख्य जातियां – अशरफ, अतरज, अजरब और अजलब विद्यमान हैं। इनमें अजरब और अजलब की आर्थिक दशा कमजोर है। अशिक्षा, बहुपत्नी विवाह, अनियंत्रित जनन दर आदि मुसलमानों की बुनियादी समस्याएं हैं। उन्हें दूर किए बगैर आरक्षण का झुनझुना दिखाना कांग्रेस की धोखेबाजी नहीं तो क्या है?

कांग्रेस अल्पसंख्यकों (केवल मुसलमानों) के विकास व उत्थान की चिंता में दुबली हुई जा रही है। मुसलमानों को लुभाने के लिए प्रधानमंत्री से लेकर राहुल गांधी तक दो–तीन जुमले–सच्चर समिति, रंगनाथ मिश्र आयोग, प्रधानमंत्री पंद्रह सूत्रीय योजना और आरक्षण सबकी जुबान पर हैं।

क्या आरक्षण की बैसाखी देकर मुसलमानों का उद्धार संभव है? अल्पसंख्यकों की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्थितियों पर सच्चर समिति द्वारा तैयार रिपोर्ट के आधार पर रंगनाथ मिश्र आयोग ने अल्पसंख्यकों के लिए 15 प्रतिशत आरक्षण की संस्तुति की है, जिसमें से 10 प्रतिशत अकेले मुसलमानों के

लिए हैं।

अभी पिछले दिनों सरकार ने पिछड़े वर्ग के लिए निर्धारित 27 प्रतिशत कोटे में से मात्र 4.2 प्रतिशत मुस्लिमों के लिए आरक्षित करने की घोषणा की है। यह क्या रेखांकित करता है? और क्या मजहब के आधार पर आरक्षण संविधान सम्मत है? आजाद भारत में संविधान निर्माताओं ने हाशिए पर खड़े समाज के संरक्षण और उसके उत्थान के लिए प्रावधान बनाए, किंतु संविधान सभा में जब मजहब पर आधारित आरक्षण की मांग उठी तो सात में से पांच मुस्लिम सदस्यों – मौलाना

अबुल कलाम आजाद, मौलाना हिफजुर रहमान, बेगम ऐजाज रसूल, हुसैन भाई लालजी और तजामुल हुसैन ने इसका कड़ा विरोध करते हुए इसे राष्ट्रीय एकता–अखंडता के लिए खतरा बताया।

26 मई, 1949 को संविधान सभा में जवाहर लाल नेहरू ने कहा था, यदि आप अल्पसंख्यकों को ढाल देना चाहते हैं तो वास्तव में आप उन्हें अलग–थलग करते हैं। हो सकता है कि आप उनकी रक्षा कर रहे हों, पर किस कीमत पर? ऐसा आप उन्हें मुख्यधारा से काटने की कीमत पर करेंगे।

27 जून, 1961 को जवाहरलाल नेहरू ने मजहब के आधार पर आरक्षण देने से रोकने के लिए राज्य सरकारों को भेजे पत्र में लिखा था, मैं किसी भी तरह के आरक्षण को नापसंद करता हूँ। यदि हम मजहब या जाति आधारित आरक्षण की व्यवस्था करते हैं तो हम सक्षम और प्रतिभावान लोगों से वंचित हो दूसरे या तीसरे दर्जे के रह जाएंगे। जिस क्षण हम दूसरे दर्जे को प्रोत्साहन देंगे, हम चूक जाएंगे। यह न केवल मूर्खतापूर्ण है, बल्कि विपदा को आमंत्रण देना है।

आज उनका प्रपौत्र उनकी ही कर्मभूमि से अपने चुनाव प्रचार का प्रारंभ करते हुए मजहब के आधार पर मुसलमानों के लिए अलग से आरक्षण का वायदा करता है तो कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी की पहल पर केंद्र की संप्रग सरकार भारतीय संसाधनों पर मुसलमानों का पहला हक होने का दावा करती हैं।

आयोग दर आयोग मुसलमानों के उत्थान व कल्याण के लिए योजनाओं की सिफारिश की जाती है। सरकार उन पर अमल करने का वायदा करती है, किंतु यथार्थ क्या है? क्यों मुस्लिम पिछड़े हुए हैं? इसका उत्तर है कि जहां सेक्युलर दलों ने मुसलमानों को थोक वोट बैंक के लिए उन्हें मुख्यधारा से काटने का काम किया वहीं मुसलमानों ने भी इन सेक्युलर छलावों में ही अपना प्रभुत्व बनाए रखने का अवसर देखा है।

पर सवाल यह है कि इसमें पिछड़े मुसलमान कहां खड़े हैं? जब तक मुस्लिमों के पिछड़ेपन के वास्तविक कारणों का ईमानदारी पूर्वक निदान नहीं ढूंढा जाता, मुसलमानों को मुख्यधारा में लाना संभव नहीं है। मजहब के आधार पर आरक्षण का दुष्परिणाम यह होगा कि आरक्षण का लाभ मुस्लिम समुदाय का क्रीमी लेयर ही उठा ले जाएगा और वास्तविक पिछड़ा वर्ग हाशिए पर ही रह जाएगा।

हालांकि मुसलमान लेखक और पंथनिरपेक्षी यह बात बहुत जोर देकर कहते हैं कि भारत में इस्लाम का प्रसार तलवार के बल पर नहीं, बल्कि उसके समतावादी चरित्र के कारण हुआ। यदि यह बात सत्य है तो एक समतावादी समाज और मजहब को मानने वाले लोगों के लिए आरक्षण की व्यवस्था कैसे न्यायोचित ठहराई जा सकती है?

सच्चाई यह है कि मुसलमानों में चार मुख्य जातियां – अशरफ, अतरज, अजरब और अजलब विद्यमान हैं। इनमें अजरब और अजलब की आर्थिक दशा कमजोर है। अशिक्षा, बहुपत्नी विवाह, अनियंत्रित जनन दर आदि मुसलमानों की बुनियादी समस्याएं हैं। उन्हें दूर किए बगैर आरक्षण का झुनझुना दिखाना कांग्रेस की धोखेबाजी नहीं तो क्या है?

अपना भविष्य खुद तय करने के लिए मुसलमानों को अपने हितों की चिंता करने के साथ–साथ सेक्युलर छलावों से अब तक मिले लाभों का भी हिसाब करना चाहिए। ❑

सबसे बड़ा राजनीतिक छल

लोकपाल बिल कांग्रेस सरकार के पाले में है। बिल लटकाने की सारी तिकडमें भिड़ाने के बाद एक तरह से कांग्रेस राज्यसभा से तब भाग खड़ी हुई जब निचले सदन से पारित बिल में राज्यसभा सदस्यों ने संशोधन पेश किए। अब कांग्रेस अजीबोगरीब दलील पेश कर रही है कि राज्यसभा में उसके पास बहुमत नहीं है और अपने सहयोगियों की दया पर निर्भर करती है। यह सच हो सकता है, लेकिन क्या हम इतिहास को भुला सकते हैं? अगर कांग्रेस 1971–77 और 1980–89 में अपने प्रचंड बहुमत का इस्तेमाल करने का साहस दिखाती तो क्या हम 2012 में लोकपाल पर विचार कर रहे होते?

■ ए. सूर्यप्रकाश

जब भी लोकपाल कानून बनाने की बात आती है, भारत के राजनेता अपने पर खींच लेते हैं और लोगों को बहकाने लगते हैं कि उनके तमाम प्रयासों के बावजूद कुछ कानूनी पेचों और राजनीतिक घटनाक्रम के कारण इसे वैधानिक पुस्तकों में स्थान नहीं मिल पाया।

क्या यह सच है? जब विधान की किताब लिखी जाएगी तो बहुत से राजनेताओं, जिनमें दो पूर्व प्रधानमंत्री भी शामिल हैं, का आकलन बहुत के शब्दों में होगा। लोकपाल की अब तक की प्रक्रिया पर नजर डालने से यह स्पष्ट हो जाता है।

लोकपाल की जरूरत सबसे पहले 1960 में प्रशासनिक सुधार आयोग (एआरसी) ने जताई थी। 1966 में भ्रष्टाचार व अकुशलता से निपटने के उपाय के तौर पर एआरसी ने एक अंतरिम रिपोर्ट जारी की। साथ ही इसने एक मसौदा भी तैयार किया था।

इंदिरा गांधी के नेतृत्व वाली सरकार ने मुस्तैदी दिखाते हुए मई 1968 में लोकपाल और लोकायुक्त बिल पेश किया। इस पर दोनों सदनों की संयुक्त समिति ने विचार किया और 1969 में लोकसभा में यह बिल पारित किया गया। यह बिल राज्यसभा में लंबित पड़ा रहा। इसके बाद लोकसभा भंग हो गई और बिल रद्द हो गया।

1971 में आम चुनाव में जोरदार जीत के बाद सत्तारूढ़ इंदिरागांधी ने लोकपाल बिल को फिर से लोकसभा में पेश किया, किंतु यह लोकसभा के एक साल के अतिरिक्त कार्यकाल के बावजूद पारित नहीं हो सका। इसका इंदिरा गांधी सरकार के पास कोई जवाब नहीं था, क्योंकि संसद के दोनों सदनों में उन्हें दो–तिहाई से अधिक बहुमत हासिल था।

1977 में कांग्रेस की करारी हार के बाद जनता पार्टी ने नए सिरे से लोकपाल बिल लोकसभा में पेश किया। इसे संसद की संयुक्त समिति के पास भेज दिया गया, जिसने जुलाई 1978 में अपनी रिपोर्ट पेश

क्या यह सच है? जब विधान की किताब लिखी जाएगी तो बहुत से राजनेताओं, जिनमें दो पूर्व प्रधानमंत्री भी शामिल हैं, का आकलन बहुत के शब्दों में होगा। लोकपाल की अब तक की प्रक्रिया पर नजर डालने से यह स्पष्ट हो जाता है। लोकपाल की जरूरत सबसे पहले 1960 में प्रशासनिक सुधार आयोग (एआरसी) ने जताई थी।

की। बिल पर विचार चल ही रहा था कि लोकसभा भंग हो गई और बिल रद्द हो गया। जनता पार्टी के शासन के पतन के बाद एक बार फिर इंदिरा गांधी भारी बहुमत से चुनकर आईं, लेकिन इस बार उन्होंने बिल पेश करने की जहमत नहीं उठाई।

1985 में राजीव गांधी सरकार ने लोकपाल बिल का प्रस्ताव रखा। यह वह समय था जब आम चुनाव में प्रचंड बहुमत के बाद राजीव गांधी जनता में बेहद लोकप्रिय थे और उन्हें मिस्टर क्लीन की उपाधि से नवाजा जाता था। वह व्यवस्था की सफाई करने और दलालों के खात्मे की बातें कर रहे थे। अपनी मां की तरह ही राजीव गांधी के पास भी संसद में भ्रष्टाचार रोधी कानून पास कराने के लिए भारी बहुमत था।

उनके पास लोकसभा की 410 सीटें थीं, किंतु कुछ बड़े-बड़े दावे करने के बाद उन्होंने भी पांव पीछे खींच लिए। इसके पश्चात गैरकांग्रेसी सरकारें लोकपाल लाने के असफल प्रयास करती रहीं। 1989 में वीपी सिंह, 1996 में देवगौड़ा, 1998 में अटल बिहारी वाजपेयी बिल लेकर आए, किंतु हर बार लोकसभा भंग होने के कारण ये रद्द हो गए।

इस घटनाक्रम से क्या सबक मिलता है? दुर्भाग्य से राजनीतिक तबके के तमाम बड़े खिलाड़ी लोकपाल विधेयक से पीछे हटते रहे हैं, किंतु निश्चित तौर पर कुछ राजनेता और पार्टियां दूसरों से अधिक दोषी हैं। 2011 तक लोकपाल बिल लोकसभा में आठ बार पेश हो चुका है। सात मौकों पर यह लोकसभा भंग होने के कारण रद्द हो चुका है। एक बार इसे सरकार ने वापस ले लिया था।

वर्तमान सरकार ही लोकपाल बिल को दो बार पेश कर चुकी है। पहली बार अगस्त 2011 में बिल लाया गया था। इसे सरकार ने वापस ले लिया और इसके स्थान पर दिसंबर 2011 में नया बिल पेश किया। संविधान के अनुसार सरकार किसी भी सदन में विधेयक पेश कर सकती है, किंतु विधेयक लाने की प्रक्रिया दोनों सदनों में अलग-अलग होती है। राज्यसभा स्थायी सदन है। यह कभी भंग नहीं की जा सकती।

1968 में पहली बार लोकसभा में पेश होने के बाद से दो-तीन ऐसे मौके जरूर आए जब सत्तारूढ़ पार्टी बड़ी आसानी से लोकपाल बना सकती थी। पहला मौका इंदिरा गांधी के सामने आया। 1968 में इंदिरा गांधी ने बिल को राज्यसभा में पेश नहीं किया। 1971 में तो उन्हें और भी जबरदस्त बहुमत मिला और उन्होंने मुस्तैदी से लोकपाल और लोकायुक्त बिल फिर से पेश भी किया। इस सरकार ने देश पर आपातकाल थोपा और अपने प्रचंड बहुमत के बल पर संविधान को सिर के बल उलटा कर दिया, किंतु इसने लोकपाल के गठन का कोई सार्थक प्रयास नहीं किया।

पहले इसमें पेश किया गया बिल कभी रद्द नहीं हो सकता, किंतु लोकसभा के भंग होने का प्रावधान है। इसमें पेश किया गया बिल तब रद्द हो जाता है, जब लोकसभा भंग हो जाती है या फिर लोकसभा द्वारा पारित किया गया बिल राज्यसभा में लंबित हो और इस बीच लोकसभा भंग हो जाए। इस तथ्य से राजनीतिक तबके की नीयत साफ हो जाती है कि सात बार रद्द होने वाले लोकपाल बिलों को राज्यसभा में पेश ही नहीं किया गया।

1968 में पहली बार लोकसभा में पेश होने के बाद से दो-तीन ऐसे मौके जरूर आए जब सत्तारूढ़ पार्टी बड़ी आसानी से लोकपाल बना सकती थी। पहला मौका इंदिरा गांधी के सामने आया। 1968 में इंदिरा गांधी ने बिल को राज्यसभा में पेश नहीं किया। 1971 में तो उन्हें और भी जबरदस्त बहुमत मिला और उन्होंने मुस्तैदी से लोकपाल और लोकायुक्त बिल फिर से पेश भी किया। इस सरकार ने देश पर आपातकाल थोपा और अपने प्रचंड बहुमत के बल पर संविधान को सिर के बल उलटा कर दिया, किंतु इसने लोकपाल के गठन का कोई सार्थक प्रयास नहीं किया। लोकपाल को लटकाने के दूसरे दोषी प्रधानमंत्री थे राजीव गांधी। उन्हें जवाहरलाल नेहरू और इंदिरा गांधी से भी अधिक बहुमत मिला, लेकिन उनमें इतना साहस ही नहीं था कि लोकपाल का गठन कर पाते। सदन में पेश करने के बाद उन्होंने बिल वापस ले लिया।

एक बार फिर लोकपाल बिल कांग्रेस सरकार के पाले में है। बिल लटकाने की सारी तिकड़में भिड़ाने के बाद एक तरह से कांग्रेस राज्यसभा से तब भाग खड़ी हुई जब निचले सदन से पारित बिल में राज्यसभा सदस्यों ने संशोधन पेश किए।

अब कांग्रेस अजीबोगरीब दलील पेश कर रही है कि राज्यसभा में उसके पास बहुमत नहीं है और अपने सहयोगियों की दया पर निर्भर करती है। यह सब हो सकता है, लेकिन क्या हम इतिहास को भुला सकते हैं? अगर कांग्रेस 1971-77 और 1980-89 में अपने प्रचंड बहुमत का इस्तेमाल करने का साहस दिखाती तो क्या हम 2012 में लोकपाल पर विचार कर रहे होते? ❑

वर्ष 2012 में चुनौतियों भी कम नहीं

चौतरफा फैले भ्रष्टाचार पर भी सरकार लगाम लगाने में असफल रही है। इस बात की भी कोई उम्मीद नहीं जगती है कि सरकार सचमुच भ्रष्टाचार के खिलाफ कोई कठोर कानून बनाएगी। अन्ना हजारे के आंदोलन से एक मजबूत लोकपाल की उम्मीद जगी थी, उस पर हमारे माननीय सांसदों ने पानी फेर दिया। देश में एक के बाद एक कई बड़े घोटाले सामने आने के बाद केंद्र सरकार निर्णायक फैसले लेने से डरती दिख रही है। इसका असर न केवल विकास की रफ्तार पर पड़ा है, बल्कि भारतीय अर्थव्यवस्था में निवेशकों का विश्वास भी डगमगाने लगा है।

■ निरंकार सिंह

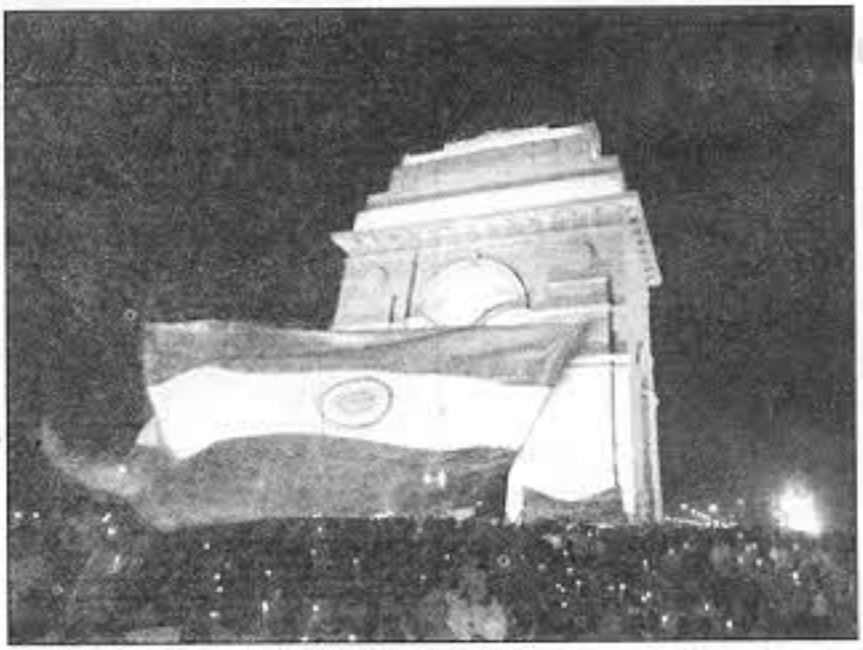

वर्ष 2012 साल में प्रवेश करते समय देश की कोई बहुत आशाजनक तस्वीर नहीं उभरती है। आर्थिक विकास के मोर्चे पर मंदी के साफ संकेत दिखाई दे रहे हैं। अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र की धीमी रफ्तार के साथ रुपये की गिरती कीमत भी आशंकाओं को और बढ़ा रही है। महंगाई और ऊंची ब्याज दरों के चलते उद्योगों में उत्पादकता की रफ्तार घट गई है। निर्यात बुरे दौर से गुजर रहा है। मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव में आर्थिक सुधारों का पहिया थमा हुआ है।

आर्थिक सुधारों के लिए बीमा, बैंकिंग और खुदरा क्षेत्र में एफडीआइ जैसे महत्वपूर्ण मामलों में सही निर्णय लेने में सरकार असमर्थ रही। सरकार गैर आर्थिक मामलों से जूझ रही है। यदि हालात से निपटने में तत्काल कदम नहीं उठाए जाते हैं तो स्थिति बहुत भयावह हो सकती है।

चौतरफा फैले भ्रष्टाचार पर भी सरकार लगाम लगाने में असफल रही है। इस बात की भी कोई उम्मीद नहीं जगती है कि सरकार सचमुच भ्रष्टाचार के खिलाफ कोई कठोर कानून बनाएगी। अन्ना हजारे के आंदोलन से एक मजबूत लोकपाल की उम्मीद जगी थी, उस पर हमारे माननीय सांसदों ने पानी फेर दिया। देश में एक के बाद एक कई बड़े घोटाले सामने आने के बाद केंद्र सरकार निर्णायक फैसले लेने से डरती दिख रही है।

इसका असर न केवल विकास की रफ्तार पर पड़ा है, बल्कि भारतीय अर्थव्यवस्था में निवेशकों का विश्वास भी डगमगाने लगा है। केंद्र प्रायोजित 558 परियोजनाओं में 241 पिछड़ चुकी हैं। हालात यह है कि पिछले कुछ महीनों से वैश्विक मंदी, घोटालों, भ्रष्टाचार और राजनीतिक अनिश्चितता के चलते अधिकारी पांच सितारा होटलों और अपने दफ्तरों में वीडियो गेम खेलकर अपना समय बिता रहे हैं।

आर्थिक सुधारों के लिए बीमा, बैंकिंग और खुदरा क्षेत्र में एफडीआइ जैसे महत्वपूर्ण मामलों में सही निर्णय लेने में सरकार असमर्थ रही। सरकार गैर आर्थिक मामलों से जूझ रही है। यदि हालात से निपटने में तत्काल कदम नहीं उठाए जाते हैं तो स्थिति बहुत भयावह हो सकती है।

राजनीतिक अक्षमता, भ्रष्टाचार और

घोटालों से त्रस्त केंद्र सरकार राजनैतिक दुष्प्रभावों को देखते हुए अर्थव्यवस्था को सुधारने की दिशा में साहसिक कदम उठाने से डर रही है। पिछले महीनो में विश्व अर्थव्यवस्था में आई मंदी ने एशिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था की हालत और पतली कर दी है। इसके कारण कमरतोड़ महंगाई, विकास की गिरती दर, लगातार बढ़ रहा राजस्व घाटा और रुपये के अप्रत्याशित अवमूल्यन ने सरकार और रिजर्व बैंक के पास स्थिति को सुधारने के काफी कम विकल्प छोड़े हैं।

लगातार बिगड़ती स्थिति और सरकार की जड़ता ने कारपोरेट जगत के विश्वास को डिगा दिया है। भारत के अरबपति उद्यमी भी अब 1.6 खरब की भारतीय अर्थव्यवस्था को चलाने में अक्षम साबित हो रहे हैं। यह हमारे लोकतंत्र का दुर्भाग्य है कि अभी तक हम अपनी संसदीय राजनीति को साफ–सुथरा और जनआकांक्षाओं के अनुरूप नहीं बना सके हैं। इस दिशा में आगामी पांच राज्यों के विधानसभा चुनाव निर्णायक भूमिका निभाएंगे।

अब इस देश के जागरूक मतदाता ही देश को नई दिशा दे सकते हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में यह देखना जरूरी है कि जिस व्यक्ति को जनता चुनकर संसद या विधानसभा भेज रही है, वह समझदार हो, ईमानदार हो और स्वार्थी न हो। हमारा जनप्रतिनिधि क्षेत्र के लिए काम करने वाला हो।

यह तभी संभव होगा, जब हर कोई अपने मताधिकार का सही प्रयोग करेगा। यदि आप अपने वोट का इस्तेमाल नहीं करते हैं तो समझिए अपराध करते हैं, वह अपने और भावी पीढ़ियों के प्रति न्याय नहीं कर रहा है। युवाओं को आगे आना चाहिए।

अगर आप किसी विचारधारा के समर्थक हैं तो उसे वोट में बदलें। अन्ना हजारे अपने लिए कुछ नहीं मांग रहे हैं। उनका मकसद भ्रष्टाचार मुक्त भारत का

लगातार बिगड़ती स्थिति ओर सरकार की जड़ता ने कारपोरेट जगत के विश्वास को डिगा दिया है। भारत के अरबपति उद्यमी भी अब 1.6 खरब की भारतीय अर्थव्यवस्था को चलाने में अक्षम साबित हो रहे हैं। यह हमारे लोकतंत्र का दुर्भाग्य है कि अभी तक हम अपनी संसदीय राजनीति को साफ–सुथरा और जनआकांक्षाओं के अनुरूप नहीं बना सके हैं। इस दिशा में आगामी पांच राज्यों के विधानसभा चुनाव निर्णायक भूमिका निभाएंगे।

अपराधिक प्रवृत्ति के लोगों को बल प्रदान करते हैं। इसलिए समाज के हित में मतदान का प्रयोग जरूरी है। यह आम जनता के लिए अपना रहनुमा चुनने का वक्त है।

कहते हैं कि सरकार ही जनता की आवाज होती है और हम अपनी आवाज कितनी बुलंद करते हैं, यह हमारे हाथ में है। यह सरकार चुनने का पर्व है। लोकतंत्र में एक–एक मत के मायने हैं और इसके प्रति यदि कोई उदासीन है तो निर्माण है। लोकपाल कानून इस दिशा में पहला कदम होगा और उसके बाद चुनाव सुधार की बारी है ताकि हमारी संसद जनता की आशा आकांक्षाओं का सचमुच प्रतीक बन सके।

आज वहां 160 से अधिक दागी सांसद मौजूद हैं, जो कभी भी भ्रष्टाचार के खिलाफ कोई मजबूत कानून नहीं बनने देंगे। उन्हें हमने और आपने चुना है, इसलिए हम अपनी जिम्मेदारी से नहीं बच सकते हैं। ❑

लेख

घरेलू महिलाओं का अवमूल्यन क्यों?

गृहणियों के काम का आर्थिक मूल्यांकन नहीं किया जाता है। इसीलिये उनके काम को दूसरी श्रेणी का माना जाता है। जबकि जो निवेश परिवार में होता है वह महत्वपूर्ण होता है। एक अपनत्व, प्यार, उत्तरदायी और उसके अहसास के साथ जो काम गृहणियों द्वारा किए जाते है, उसको कोई महत्व नहीं दिया जाता है, क्योंकि वे घर की आय में सीधे–सीधे कुछ नहीं जोड़ती है। ये समाज के सामन्ती सोच की ओर संकेत करती है।

■ रेणु पुराणिक

जब तक अर्थशास्त्री गृहणियों के कार्यों का आर्थिक मूल्यांकन के लिए कोई तरीका ढूंढ नहीं लेते और जब तक समाज उस तरीके को स्वीकार नहीं कर ले, तब तक स्वयं ही इतना अवश्य करे कि अपने घरों की महिलाए जो घर पर रहकर घर का सारा काम कुशलतापूर्वक संभाल रही है, उनका ईमानदारी से मूल्यांकन करें और उनके काम के योगदान का सम्मान करे।

जो घरेलू महिलाओं या फिर हाऊस वाईफ का फिनोंमिना है वो पूरी तरह से शहरी और आधुनिक जीवन की देन है। गाँवों में घरेलू और कामकाजी महिलाओं जैसी कोई शब्दावली नहीं रहती है। खेतों में महिला व पुरुष दोनों साथ–साथ और बराबरी से काम करते हैं। शहरी और नौकरीपेशा वर्ग ने गृहणी शब्द का आविष्कार किया और उसी ने उसे हिकारत भी दी।

जब किसी पुरुष से यह पूछा जाता है कि आप क्या करते हैं तो तत्काल उनका उत्तर होता है कि मैं डाक्टर हूँ, मैं इंजीनियर हूँ, मै वकील हूँ या मैं उद्योगपति हूँ आदि इसी तरह के अपनी–अपनी योग्यतानुसार परिचय देते हैं। परंतु जब उनसे यह पूछा जाता है कि आपकी पत्नी क्या करती है तो उनका उत्तर मिलता है कि वह कुछ नहीं करती, गृहणी है या हाऊस वाईफ है।

लेकिन ये पत्नियाँ घर में भोजन बनाती है, घर की सफाई करती है, कपड़े धोती है, बच्चों को संभालती है, घर परिवार की देखभाल करती है अतएव परिवार के प्रत्येक सदस्य की सुख–सुविधा का ध्यान रखती है और भी न जाने कितने घर के अनेकानेक काम करती रहती है। फिर भी पति की दृष्टि में वह केवल गृहणी है और कुछ नहीं। समाज की दृष्टि में भी गृहणियाँ कामकाजी नहीं होती है।

गृहणियों के काम का आर्थिक मूल्यांकन नहीं किया जाता है। इसीलिये उनके काम को दूसरी श्रेणी का माना जाता है। जबकि जो निवेश परिवार में होता है वह महत्वपूर्ण होता है। एक अपनत्व, प्यार, उत्तरदायी और उसके अहसास के साथ जो काम गृहणियों द्वारा किए जाते है, उसको कोई महत्व नहीं दिया जाता है, क्योंकि वे घर की आय में सीधे–सीधे कुछ नहीं जोड़ती है। ये समाज के सामन्ती सोच की ओर संकेत करती है।

हमारे ही देश भारत में कहा जाता है कि "बिन घरनी – घर भूत डेरा।" हम

वास्तव में हम अत्यधिक भौतिक दौर में रह रहे हैं। यदि यहाँ पर आर्थिक रूप से योगदान नहीं मिलता है तो उसे काम की श्रेणी में नहीं रखा जाता है। हम अपने घरों में काम करने वाली नौकरों के काम का तो मूल्याँकन करते हैं लेकिन यदि वही काम घर की महिलाएं करती हैं तो उसे उसका कर्त्तव्य मानते है तथा उसके काम को कोई महत्व नहीं देते हैं। अर्थात् उसके काम के लिए कोई गर्व या सम्मान नहीं रहता।

अच्छी तरह जानते हैं कि किसी भी घर में माँ, पत्नी या फिर बहु व बेटी की महत्व क्या है। उनके बिना न घर चल सकता है और न ही समाज। फिर भी उनके कार्यों को अनुपयुक्त मानना, गृहणी की योग्यता को और परिवार तथा समाज में उसके योगदान को कम करता है।

वास्तव में हम अत्यधिक भौतिक दौर में रह रहे हैं। यदि यहाँ पर आर्थिक रूप से योगदान नहीं मिलता है तो उसे काम की श्रेणी में नहीं रखा जाता है। हम अपने घरों में काम करने वाली महरियों के काम का तो मूल्याँकन करते हैं लेकिन यदि वही काम घर की महिलाएँ करती हैं तो उसे उसका कर्त्तव्य मानते है तथा उसके काम को कोई महत्व नहीं देते है। अर्थात् उसके काम के लिए कोई गर्व या सम्मान नहीं रहता। लेकिन घर से बाहर जाकर आराम से परिवार का कोई भी सदस्य काम करता है, तो उसके पीछे वही महिलाएं होती है जो उनके घर की जिम्मेदारी से संभाल रही होती है और उनके जीवन को सरल एवं सहज बना रही होती है। अनचिन्ही और बेनाम ये गृहणियाँ आपको उन्नति एवं यश की सीढ़ियाँ उपलब्ध करवा रही है।

यह समस्या हमारे देश में ही नहीं अपितु सारे विश्व में सब स्थानों पर है। अनेक देशो में गृहणियों के काम का अवमूल्यन होता है। हमारे देश में और अन्य देशों की गृहणियों के कामों का आर्थिक मूल्यांकन पर काम चल रहा है। सन् 2004 में एक उच्च न्यायालय ने गृहणी के काम की कीमत कम से कम तीन हजार रुपए प्रतिमाह स्वीकार की है।

केरल प्रांत में घरेलू महिलाओं ने भी

मासिक भत्ता की माँग की है। बंग्लादेश के वित्तमंत्री भी मानते है कि घर रखवारी का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

वर्तमान में ही उच्चतम न्यायालय ने एक केस की सुनवाई करते समय इस मामले पर बहुत ही संवेदनशील टिप्पणी की है। एक दुर्घटना में मृत महिला के परिजनों को दिए जाने वाले मुआवजे की राशि बढ़ाते हुए उच्चतम न्यायालय ने सन 2010 की जनगणना प्रक्रिया में घरेलू महिलाओं को भिखारियों व कैदियों के समकक्ष में रखे जाने पर आपत्ति दर्ज करते हुए इस बात को रेखांकित किया कि जनगणना में घरेलू महिलाओं के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाया गया है। इस दृष्टिकोण को गलत बतलाते हुए न्यायालय ने उस रिसर्च का उल्लेख किया जिसमें बताया गया है कि भारत की छत्तीस करोड़ गृहणियों के कामों का वार्षिक मूल्य लगभग 612.8 अरब डॉलर है। रिसर्च जो चाहे कहे, उच्चतम न्यायालय जो चाहे फटकार लगाए, परंतु सामाजिक स्तर पर महिलाएं जो घर में रहती है उनको लेकर विकसित हुआ दृष्टिकोण बहुत निराशाजनक चित्र उद्धरत करता है।

जब तक अर्थशास्त्री गृहणियों के कार्यों का आर्थिक मूल्यांकन के लिए कोई तरीका ढूंढ नहीं लेते और जब तक समाज उस तरीके को स्वीकार नहीं कर ले, तब तक स्वयं ही इतना अवश्य करे कि अपने घरों की महिलाए जो घर पर रहकर घर का सारा काम कुशलतापूर्वक संभाल रही है, उनका ईमानदारी से मूल्यांकन करें और उनके काम के योगदान का सम्मान करे। गृहणियों के कामों को गरिमा दें। क्योंकि घर और बाहर के बीच यदि आप संतुलन साध पाते है तो ये उन्हीं के बेनाम योगदान के कारण ही संभव हो पाता है।

नारी परिवार की नींव का पत्थर है,
नारी जगत की धूरी है।
नारी के बिना सृष्टि की,
कल्पना अधूरी है। ❑

पलाचीमाड़ा ट्रिबूनल बिल को तुरंत राष्ट्रपति की अनुशंसा मिले

पलाचीमाड़ा केरल राज्य में एक गांव है, जिसके निवासी पिछले कई वर्षों से पेय निर्माता कोका–कोला कंपनी के द्वारा भयंकर जल प्रदूषण और अत्यधिक जल दोहन के कारण उत्पन्न जल संकट के खिलाफ संघर्ष कर रहे है।

पिछले लगभग एक दशक से कोका–कोला कंपनी के बाहर स्थानीय लोगों का धरना निरंतर जारी है। यह संघर्ष स्थानीय समुदाय के अधिकारो के हनन के खिलाफ संघर्ष है। कोका–कोला कंपनी की अपनी स्वीकारोक्ति के अनुसार प्रतिदिन 5 लाख 10 हजार लीटर पानी भूमि से खिंच लिया जाता है।

स्थानीय लोगों का कहना है कि वास्तव में यह कंपनी 3 गुना अधिक पानी का उपयोग करती है। स्थानीय लोगों के निरंतर संघर्ष के परिणामस्वरूप केरल विधानसभा के द्वारा पलाचीमाड़ा के लोगों की क्षतिपूर्ति हेतु ट्रिबूनल बिल पारित किया गया, जिसे केंद्र सरकार के पास भेजा गया। प्राप्त सूचनाओं के अनुसार यह बिल केंद्र सरकार के द्वारा कोका–कोला कंपनी द्वारा किए गए विरोध के कारण वापिस राज्य सरकार को भेज दिया गया है।

कोका–कोला कंपनी के द्वारा स्थानीय जल संसाधनो के दुरुयोग, प्रदूषण और स्थानीय लोगों के स्वास्थ्य पर पड़ रहे दुष्प्रभावों के खिलाफ पलाचीमाड़ा गांव के लोगों के संघर्ष के समर्थन में स्वदेशी जागरण मंच के दक्षिण भारत के संगठक और पलाचीमाड़ा संघर्ष समिति के संयोजक श्री के.वी. बीजू के नेतृत्व में दिनांक 16 दिसंबर 2011 को धरना एवं प्रदर्शन कर रहे स्थानीय लोगों के साथ पुलिस ने दुर्व्यवहार किया और 4 महिलाओं सहित 22 प्रदर्शनकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

प्रदर्शनकारी केंद्र सरकार द्वारा पलाचीमाड़ा ट्रिबूनल बिल को राष्ट्रपति की मजूरी दिए जाने की मांग कर रहे थे। केंद्र सरकार द्वारा स्थानीय संसाधनों एवं पलाचीमाड़ा के निवासियों का शोषण कर रही कोका–कोला कंपनी का समर्थन और केरल विधान सभा द्वारा सर्वसम्मिति से पारित इस बिल को राष्ट्रपति की मंजूरी न मिलना, सीधे तौर पर केंद्र सरकार और कोका–कोला कंपनी की मिली–भगत को दर्शाता है।

स्वदेशी जागरण मंच मांग करता है कि पलाचीमाड़ा ट्रिबूनल बिल को तुरंत राष्ट्रपति की अनुशंसा प्रदान की जाए, कोका–कोला पलाचीमाड़ा प्लांट को तुरंत बंद करने का आदेश दिया जाए और गिरफ्तार किए गए प्रदर्शनकारियों की बिना शर्त सम्मानपूर्वक रिहाई की जाए। ऐसा न करने पर केंद्र सरकार के खिलाफ देशव्यापी संघर्ष छेड़ा जा सकता है, जिसके परिणामों के लिए केंद्र सरकार स्वयं जिम्मेवार होगी। ❑